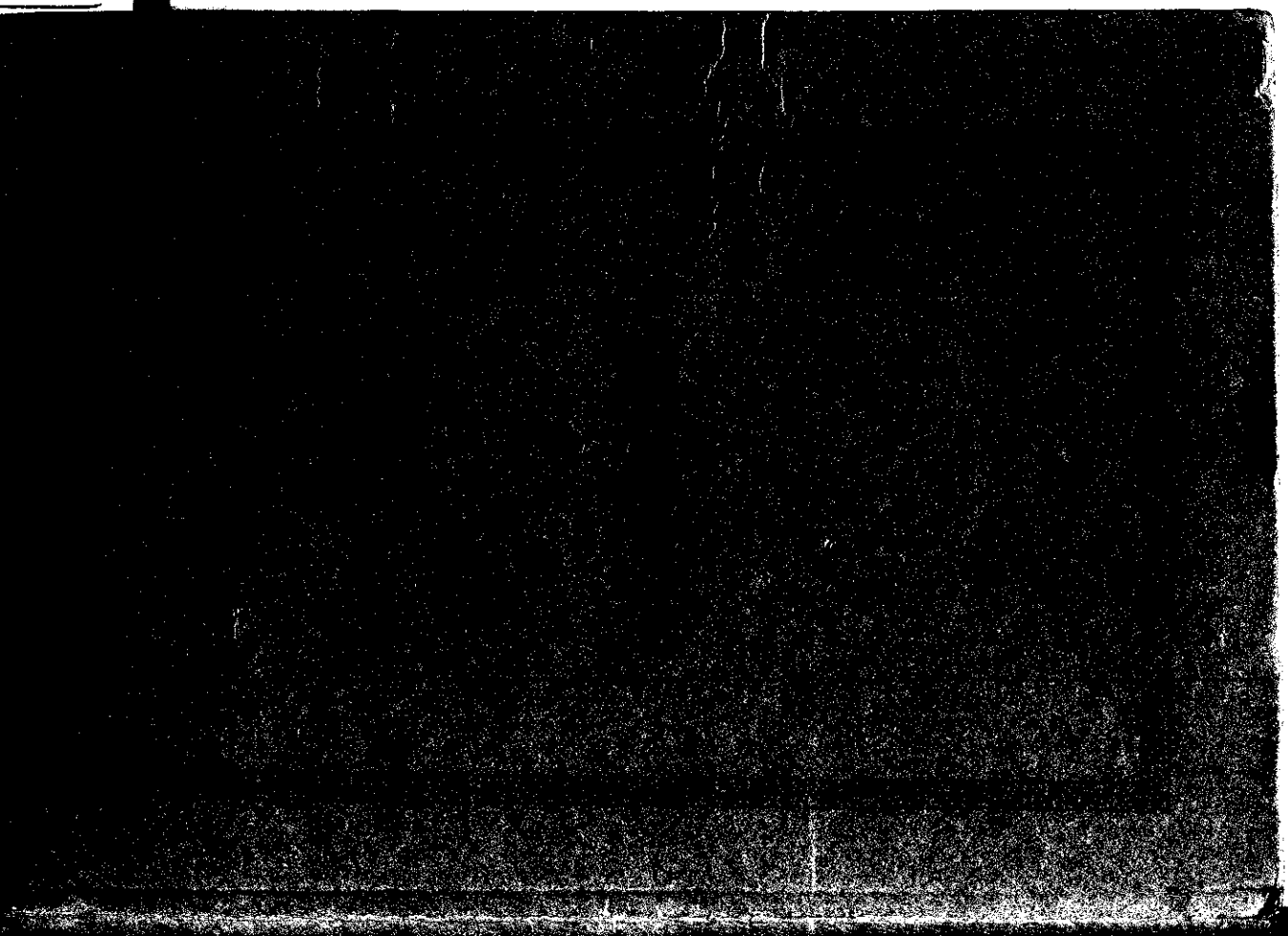

प्रथम प्रकाशन—आषाढ़, १८८४ शकाब्द
जुलाई, १९६२

प्रकाशक
जे० एन० सिंह राय
न्यू एज पब्लिशर्स प्राइवेट लि०
२२, कैनिंग स्ट्रीट
कलकत्ता-१

गोल मार्केट
नयी दिल्ली-१

मुद्रक
रनजित कुमार दत्त
नवशक्ति प्रेस
१२३, लोअर सर्कुलर रोड
कलकत्ता-१४

दो रुपये

NAYE SWAR : NAYI REKHAYEN
By
Dr. Lakshminarain Lal
Price Rs. Two Only

मधुबन की मुरलिया

जाने कैसा बुखार था ! फेरई की औरत बिंदिया चटपट मर गई।

फेरई अपने देवतन बाबा को सुअर का एक छौना चढ़ाने की मिनती करके रह गया।

उसके पड़ोसी मधुबन ने अपनी ओर से काली माई के थान पर सवा घण्टे कीर्तन-नाच करके क्या किया ? बिंदिया की बाँह तो भगवान् ने पकड़ ली।

मनवर नदी के कंकरहवा घाट पर उसे फूंककर लोग एक घड़ी रात बीते गाँव लौटे। चमरटालिया में आज कुकुर-बिलार भी चुप थे। बिंदिया की मुँहबोली पड़ोसिन मुरलिया अपने चबूतरे पर बैठी रो रही थी। सहसा पिछवारे पीपल के पेड़ पर मुआँचिरई बोली, मुआँ !··· मुआँ !···तो मुरलिया घर में से मिट्टी का घड़ा लिये हुए दौड़ी, और पीपल की जड़ में उसे फेंक मारा। घड़ा बहुत तेज स्वर में फटा और मुआँचिरई पंख फड़फड़ाकर कंकरहवा घाट की ओर उड़ गई।

हाय ! यह तो बड़ा असगुन है···!दहिजरी अब न जाने क्या खाएगी !···अभी छाती नहीं भरी क्या मरखौनी की ?···

टोले के सारे चमार फेरई के उजड़े हुए दरवाजे पर कुछ देर मौन बैठकर अपने-अपने घर चले गये। फेरई के चारों अनाथ बच्चे 'माई' 'माई' की रट लगाकर रो रहे थे। घर में न चिराग, न बाती। कौन जलाए ? बड़ा लड़का आठ साल का है, सो तो वह अभी नंगा घूमता

है। उसकी पीठ पर लड़की है, सुमनी, छः साल की। तीसरा बच्चा पाँच साल का है, बिपता नाम है उसका; दोनों आँखें भवानी माई ने ले ली हैं। चौथा बच्चा तीन साल का है, परदेसी नाम है उसका। यह सबसे छोटा बच्चा कलकत्ते के परदेश की याद है। जब यह हुआ था, उस समय फेरई कलकत्ते के चटकल की नौकरी में था।···और एक अदेखा बच्चा बिंदिया अपने गर्भ में ही छिपाए चली गई।

बिंदिया की सूनी खाट पर माथा टिकाए फेरई निःशब्द रो रहा था, और उसका छोटा बच्चा चुपचाप डरा-सा पिता का अँगोछा थामे खड़ा था। शेष बच्चे बेतरह सिसक-सिसककर रो रहे थे।

अँधेरे में अपने छोटे-छोटे बच्चों को देखकर फेरई को लगा, जैसे वह किसी भयानक तूफान में फँसकर कहीं पानी में डूब रहा है—सब को साथ लिये हुए।

सहसा बिपता ने कहा, "काका, ढिबरी कहाँ है ? चिराग़ जलादूँ।"

सूर बच्चे को ही प्रकाश की चिंता हुई। वह उस अँधेरे में ढिबरी टटोलने लगा। फेरई ने उठकर ताक़ पर टटोला। ढिबरी में तेल नहीं था। उसमें सूखी बाती थी, पर घर में न आग, न दियासलाई।··· सब-कुछ बिंदिया के संग चला गया। पिछली दो रातों से चिराग़ पूरी-पूरी रात जलकर बुझ गया था।

सहसा दरवाजे पर हाथ में चिराग़ लिये हुए मुरलिया आ खड़ी हुई। सब बच्चों ने भरी आँखों से काकी को देखा। मुरलिया ने आगे बढ़कर चिराग़ को सामने ताक़ पर रख दिया, और सब बच्चों को अपने साथ लेकर वह अपने घर आई। एक थाली में खिचड़ी परोसकर उसने बच्चों को आँगन में बिठा दिया। सब बच्चे बेतरह भूखे थे। खिचड़ी अभी जल रही थी, छोटे बच्चे ने जल्दी से उसमें अपना हाथ डाल दिया, और छिनछिनाकर रोने लगा। शेष बच्चे जल्दी-जल्दी खाने लगे और उनकी आँख-नाक में पानी छलकने लगा।

परदेशी को अलग अपने हाथ से मुरलिया काकी खिलाने लगी। उसी बीच बिपता बोला, "काकी हमरौ अलगै परोस देव।" बेचारा अंधा बच्चा, जब तक वह थाली में खिचड़ी ढूँढ़ता, तब तक दोनों बच्चे उसे जल्दी-जल्दी निगल जाते थे।

बच्चों को खिला-पिलाकर मुरलिया उन्हें उनके घर ले गई। फेरई अब तक वहीं खाट पकड़े बैठा था, जिस पर बिंदिया ने अंतिम साँस ली थी।

वहीं नीचे एक कथरी बिछाकर मुरलिया ने बच्चों को एक साथ लिटा दिया। फिर फेरई से बोली, "बड़कू, लड़कनि कै मुँह देखौ और सब-कुछ भूल जाव ! जो चाहै बिधना ओही होय रहना !" यह कहते-कहते मुरलिया स्वयं रोने लगी। आँसू पीती हुई और आँखों में बहते हुए आँसुओं को आँचल से सुखाती हुई वह उलटे पाँव वहाँ से ठाकुर बाबा के घर गई। वहाँ से गुड़ माँगकर वह अपने घर आई, तब तक उसके दोनों लड़के, मोहना और पियारे, सो चुके थे। जल्दी-जल्दी गुड़ का शरबत बनाकर भरा लोटा लिये वह फेरई के पास गई और उसे उठाते हुए कहा, "लेव, पानी पी लेव, बड़कू। तुम्हार पिया हुआ पानी ही आज बड़की को मिलेगा, नहीं तो बड़की के आतमा पियासे रहि जाई।"

फेरई ने आँख उठाकर मुरलिया को देखा और बिना कुछ बोले, पूरा शर्बत वह जैसे एक ही साँस में पीने लगा।

"धीरे-धीरे पीओ, बड़कू। न जाने कब से खाली पेट में बान लग जाई न !"

फेरई के पेट में सचमुच जैसे बान लग गया। वह दोनों हाथ से पेट को जोर से दबाए हुए कराहने लगा। मुरलिया ने कहा, "बड़कू, खाट पै लेट जाव।"

और वह अपने मन में देवतन बाबा से विनती करने लगी। मुर-

लिया का पति, मधुबन, नचनिया था। कई तरह की नाच-मण्डली में नाचने जाता था, रासधारी में, कथिक में, सफेड़ा और रैदास मण्डली में। इसके अतिरिक्त देवी-भवानी के थान पर उस-जैसा कीर्तन नाचने वाला दूर-दूर तक कोई न था।

मधुबन उन दिनों अपनी नाच-मण्डली के साथ बाँसी तहसील में कहीं दूर नाचने चला गया था। वहीं से दूसरी साई पाकर वह डुमरीगंज की ओर बढ़ गया था।

पन्द्रहवें दिन मधुबन अपने गाँव आया। कमाई अच्छी हुई थी। बस्ती के बाज़ार से उसने मुरलिया के लिए एक लाल साड़ी खरीदी थी, केलहिया साड़ी।

संध्या समय टोला के कई लोगों ने मधुबन से अपने-अपने ढंग से कहा कि मुरलिया को क्या हो गया है; मुरलिया को मना करो! फेरई के घर तभी से वह इतना आती-जाती रही है। मरनी पड़ने पर एक जून, दो जून भोजन कोई बना-खिला देता है कि रोज-रोज ?

मधुबन मुरलिया को आज बीस वर्षों से जानता है। बारह वर्ष की उमर में वह गौने आई थी। मधुबन सोलह साल का था और उस जवार में नाच-गाने में प्रसिद्ध हो चुका था। मुरलिया ने उसे कितने ही गीत गा-गाकर सिखाए थे। मधुबन के दो अन्य भाइयों ने उसे जब सहसा अलग किया, तो मुरलिया ने दिन-रात एक करके माटी-फूस से अपना घर अलग बना लिया था। मधुबन को आज तक उसने न खेती-बारी में मज़दूरी करने दिया था, न कीचड़-गोबर में हाथ-पैर डालने। उसका कहना था कि उसका काम नाचने-गाने का है, मेरा काम कीचड़-गोबर का है। टोला की सारी औरतें मुरलिया के भाग्य से ईर्ष्या करती थीं, आज तक उसके पति, मधुबन, ने उसे कभी सींक से भी न मारा था।···देखो न छबीली को, खेत-बारी, घर-आँगन, बजार-पेंड़ा चारों ओर गाती रहती है।···उसके संग गौने में आई हुई टोले

की सारी औरतें जैसे बुड्ढी दीखने लगी हैं, पर मुरलिया की काठी तो देखो, कैसी भरी-भरी लगती है, गदराई हुई अब भी !···

मधुबन मुरलिया के स्नेह-स्वभाव को खूब जानता था। राह चलते, मेले-ठेले में दुखियारी औरतों के गले लगकर रोने लगना, उन्हें सखी-सहेलरी बना लेना उसके लिए कितना सहज था।···फिर फेरई तो मधुबन का दोस्त था और उसकी दिवंगता स्त्री बिंदिया, मुरलिया की मुँहबोली सखी! बिंदिया के चारों बच्चे जब माँ के लिए रोते होंगे, तो मुरलिया अपने घर चुप कैसे बैठी रह सकती थी ?

मधुबन ने मुरलिया से उस संबंध में कुछ नहीं कहा, न उस प्रसंग में कुछ पूछा ही। वह मुरलिया के शील-संकोच और स्नेह-स्वभाव से खूब परिचित था। उस पर उसे इतना विश्वास और भरोसा था कि मधुबन टोले वालों की बातों पर हँसकर रह गया। मुरलिया स्वयं मधुबन को एक-एक बात बताती रही कि किस तरह बड़कू के चारों बच्चे अनाथ-से लगते हैं। बड़कू किस तरह बिंदिया दीदी के लिए रोते रहे। मुरलिया ने मधुबन से यह भी कहा कि तुम तो देस-देस के भौंरा हो, कहीं कोई औरत पटाओ न कि बड़कू कै घर बसा रह जाय। परदेशी अभी तीन ही साल का है। माई-माई रटता है गरीब। बिपता दोनों आँखों का सूर है बेचारा। बड़कू ठाकुर के यहाँ हरवाही करेंगे, तो घर में आग कौन जलाएगा ? ऐसे तो घर बिलाय जायगा, बड़कू कै कमर टूट जायगी। हाय! भगवान न ऐसा करे !···

मधुबन नाच की साई पाकर हरैय्या के पास सरजू के माझे में चला गया।

फेरई का कलेजा पत्थर का है। बच्चों के लिए एक जून खाना नहीं बना सकता। रात को चुपके से सो जाता है। बच्चे मुरलिया के चबूतरे पर भूख के मारे बिलखते रहते हैं। मुरलिया से यह-सब

देखा नहीं जाता। वह हहाकर दौड़ती है। फेरई के घर में खाना बना आती है, तब बच्चों के मुँह में कहीं अन्न पड़ता है।

एक रात फेरई के घर में मुरलिया को बहुत देर हो गई। चारों बच्चे आँगन में फटी कथरी के ऊपर नंगे धूल-धूसरित सो गए थे। फेरई को खाना परोसकर मुरलिया तेजी से अपने घर जाने लगी। सहसा उसने सुना, फेरई सिसककर रो रहा है।

वह रुक गई। फेरई ने उसे देखकर झटपट खाना समाप्त किया। फिर मुरलिया के पास आ, हाथ जोड़कर खड़ा रह गया।

"का बात है, बड़कू ?" मुरलिया ने पूछा।

फेरई उसे देखता हुआ चुप रहा। आँसुओं से गीली आँखों के भीतर जैसे कहीं कोई आग जल रही हो। मुरलिया दो कदम दूर खड़ी सिर झुकाए हुए बोली, "बड़कू राम-राम कहो! बड़की की आतमा को सांति मिलेगी!"

टोले के पद से फेरई मुरलिया का जेठ है, इसलिए कहीं उससे मुरलिया छू न जाए, वह पीछे खिसकती जा रही थी। जेठ को छूना अधर्म है, पाप है।

पर फेरई तो आज मुरलिया के चरणों पर गिर गया! हाय, यह क्या हो गया? क्या किया इसने?

"बड़कू!" चीखकर मुरलिया दूर हट गई।

फेरई ने काँपते हुए कहा, "मुरलिया, मैं जहर खाकर मर जाऊँगा!"

"आखिर काहे, बड़कू ?"

"का बताऊँ, तू समझ जा न!"

"हाय! हम का समझें ?"

फेरई ने बढ़कर मुरलिया का हाथ पकड़ना चाहा, तो मुरलिया ने तड़पकर कहा, "हाय! छी:-छी:-छी:! तुझे दीन-दुनिया का कुछ

खियाल भी है कि बौराय गए? ऐसा भी कोई सोचता है! होस ठिकाने है कि नहीं! हाय! बड़की कै आतमा आज का कहती होगी! तुम्हारे इसी मनसा-पाप से वह मरी है बड़कू! खबरदार, हाँ! तुम पर देवी कै कोप है!"

अगले दो दिनों तक, जब तक मधुबन न लौटा, मुरलिया अपने घर से बाहर न निकली। मधुबन से मिलते ही उसने कहा कि फेरई बड़कू के सर पर बिंदिया दीदी की प्यासी आत्मा चुरैल बनकर चढ़ी हुई है; वह पगला जाएगा। वह आव-बाव बकने लगा है। उसकी सांति के लिए कुछ जंतर-भभूत करो। या तो इसी पीपल के तरे माईजी का कीर्तन नाच दो। मुरलिया ने जो-जो कहा, मधुबन ने तत्काल पूरा कर दिया।

पर अगले दिन टोले के चमारों ने क्या देखा कि फेरई सब बच्चों को उसी तरह अनाथ छोड़कर कहीं ग़ायब हो गया। दो दिन बीते, चार दिन, एक हफ़्ता और पखवारा भी बीत गया।

फेरई के चारों बच्चे मुरलिया के चबूतरे पर बिलबिलाते रहे। मुरलिया के घर में कितना था कि वह उन बच्चों को खिलाती! पर उसने किसी भाँति उन्हें मरने न दिया। फिर ऐसे समय गाँव की बाँहें ऐसी आजानु हो जाती हैं कि उसकी स्नेह-परिधि में सब-कुछ समा जाता है।

फेरई का बड़ा लड़का, चनरा, ठाकुर बाबा के यहाँ भैंस चराने लगा। दिन को चना-चबेना, रात को भोजन। सुमनी सुभग चौधरी के यहाँ बकरी चराने लगी। अंधा बिपता मुरलिया के चबूतरे पर अपने सबसे छोटे और अंतिम भाई परदेशी को पकड़े बैठा रहता। इन दोनों का पूरा भार मुरलिया पर था।

गाँव के लोगों के विचार फेरई के प्रति बहुत उग्र हो रहे थे। कुछ लोग कहते थे कि फेरई जब गाँव लौटे, तो उसे बाँधकर मारा जाए।

वह बच्चों को इस तरह छोड़कर भागा क्यों ?···कुछ लोगों का विचार था कि फेरई जरूर कहीं से कोई औरत लाएगा। उस समय टोला के चमार उससे हुक्का-पानी बंद कर दें। और फेरई का अंधा लड़का बिपता कहता था कि अब वह फेरई के संग नहीं रहेगा। वह अधर्मी है, हत्यारा है !

मुरलिया सोचती थी कि फेरई बड़कू के सर पर चढ़े भूत ने कहीं उसे कुआँ-इनार में न ढकेल दिया हो !

पर एक दिन कलवारी डाकखाने के डाकिये से गाँव में पता चला कि फेरई सरजू के माझे में मड़ई डालकर रह रहा है। डाकिये से फेरई की भेंट हुई थी। पर अपने छोटे बच्चे और मुरलिया के सिवा वह किसी को नहीं पूछ रहा था। और एक सुबह गाँव-भर में यह खबर फैल गई कि मुरलिया फेरई के तीन बच्चों, चनरा, सुमनी और परदेशी के साथ कहीं चली गई। केवल अंधा बिपता छुट रहा।

मुरलिया उन बच्चों के संग कहाँ गयी ?

ज़रूर फेरई आया होगा। वह मुरलिया को अपने बच्चों-सहित गाँव से भगा ले गया। पर मुरलिया कोई कमज़ोर औरत अथवा बच्ची थोड़े ही है कि फेरई उसे भगा ले जाए ? अरे, मुरलिया तो धाकड़ औरत है, पूरे पाँच हाथ की ! फेरई का कल्ला थाम ले तो वह जल्दी छुड़ाकर निकल नहीं सकता।

तो जरूर इसमें मुरलिया की बदचलनी है !

गाँव के लोगों ने मधुबन को घेर लिया, "सुनो मधुबन ! तुम्हारी औरत को तुम्हारे जीते फेरई इस गाँव से भगा ले गया। उसकी यह मजाल ! बोलता है कि नहीं, मुरलिया कहाँ गयीं ? तुझे कुछ मालूम है ?"

"हाँ, मालूम क्यों नहीं है ? मुरलिया मुझसे पूछकर फेरई के संग माझे में गयी है।"

"क्यों गयी है ? तो तुम उस अधर्मी के गाँव छोड़ने से मिले हो ? वह हत्यारा अपने बच्चों को यहाँ छोड़कर चुपके से गाँव का इस तरह तिरस्कार करके भगा था, उसमें तुम साथ दे रहे हो ?"

"अरे, राम-राम कहो, पंचो ! फेरई जबरदस्ती इसकी औरत को भगा ले गया ! दुधार गाय और तीन बछरू, और क्या ! यह मेहरा है मेहरा, नचनिया कहीं का ! यह बात बना रहा है। इसकी औरत हाथ से गयी कि···"

"अरे, वह तो गयी ही, गाँव की इज्जत जो गयी ! कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ? आज चमारों के इस टोले में यह हुआ, कल···"

"बोल मधुबन ! नचनिया—मेहरा कहीं का ! नहीं तो···"

"सुनो पंचो ! मुरलिया आज ही दिन डूबते-डूबते यहाँ पहुँच जाएगी।"

"क्या बकते हो ? आज ही गयी है, दिन डूबने के पहले तक क्या लौटेगी ? वह तुझे उल्लू बना रही है, मधुबन ! तू नचनिया-मेहरा क्या जाने !"

"फेरई रात को यहाँ आया था, तुमने हम लोगों को बताया क्यों नहीं ? तू उस बेईमान से मिला हुआ है !"

टोले के चमार चुप थे। पर शेष गाँव बहुत ही उत्तेजित था। मधुबन के दोनों लड़कों, मोहना और पियारे को लोगों ने मुरलिया के खिलाफ़ भड़काना शुरू कर दिया कि देख, तोर माई फेरई के संग भाग निकली।

मोहन और पियारे कुल-जाति और आत्म-सम्मान के गौरव में उत्तेजित होकर अपनी माँ को गालियाँ दे रहे थे और मधुबन को आग्नेय दृष्टि से देख रहे थे।

उस दिन डूबते-डूबते मुरलिया सचमुच गाँव वापस आ गई—थकी-प्यासी।

लोग देखकर दंग रह गए। फिर भी मुरलिया रात को ठाकुरबाबा के दरवाजे पर बुलाई गई।

"क्यों रे, तू उस अधर्मी फेरई के संग क्यों गयी ?"

"जिससे कि उसके बच्चे उसके पास पहुँच जाएँ," मुरलिया ने कहा।

"तेरे जाने से ही वह अपने बच्चों को साथ ले गया, ऐसी क्या बात थी ?"

"भवानी का कोप है उसके माथे पर, और का कहूँ ? चार-चार दिनों तक खाना नहीं खाता। दाढ़ीजार का मुँह देखकर रुलाई आती है।···रात को मेरे चबूतरे पर आया। मैं बाहर निकली। मेरे पैर को छानकर रोने लगा। फिर अपने उजड़े घर में दौड़ा और वहाँ भोंकार छोड़कर रोने लगा। मैंने समझाया, बड़कू, अपना माथा ठीक करो, अपने अनाथ बच्चों का मुँह देखो, इन्हीं के सहारे जी जाओगे ! वह बोला, मुरलिया, मेरे बच्चों को तुम वहाँ तक पहुँचा दो। बिपता ने कहा, मैं अपने गाँव से कहीं नहीं जाऊँगा। मैं यहीं काकी के ही संग रहूँगा। माझे में वहाँ न चूल्हा, न चक्की ! सूनी एक मड़ैया, बस ! मैंने चूल्हा बनाया। अपने संग एक बटलोई और कोदो का चावल ले गई थी। उसे बनाकर खिलाया। जिस अहीर के यहाँ बड़कू हरवाही कर रहे हैं, उसे सब बताकर और बड़कू को सब सहेजकर मैं चली आई।"

"बड़ी माया-ममता है तुझे फेरई से !"

इस पर मधुबन बोला, "सरकार लोग इसे चाहे जो समझें, हम तो गरीब अनपढ़ हैं, धर्मावतार !"...

दिन-माह बीते। एक वर्ष बीता। फेरई के घर की नंगी टूटी दीवारें अब भी खड़ी थीं। कोई चमार इस घर को फिर से उठाकर यहाँ बसना नहीं चाहता। कहते हैं, इस घर का देवतन बाबा उखड़ा

हुआ है। इस घर की सूनी चौहद्दी में बिंदिया भैरवी बनकर बैठी है। पीपल पर उसके गर्भ का अजन्मा बच्चा जिन्न बनकर रहता है।

गाँव के लोग फेरई की खोज में रहते हैं। उन्हें शक है कि फेरई मधुबन के घर कभी-न-कभी आता-जाता रहता है। अगर एक बार भी वह गाँव में आया हुआ पकड़ लिया जाए, तो बेटा को इस तरह गाँव छोड़ने का मजा चखा दिया जाए। और यदि कहीं उसके संग मुरलिया भी पकड़ ली जाए, तो गाँव की मर्यादा भंग करने का सारा दण्ड चुका लिया जाए।

चैत रामनवमी को, टाँड़े के सरजू घाट पर बहुत बड़ा मेला लगता। मधुबन वहीं नाचने गया हुआ था और मुरलिया भी घर से गायब थी, पिछले दो दिनों से। वह ज़रूर फेरई के संग सरजू का मेला देखेगी। मधुबन को नाचने से फुर्सत नहीं, इधर औरत बदमाश की चाल वह मेहरा मरद क्या समझेगा ! दो दिन, दो रातों से वह फेरई के घर माझे में रह रही है, सरजू के मेले में फेरई उसे मेला ज़रूर घुमाएगा। अगर वहीं वे दोनों पकड़ लिये जाएँ तो बस सातों गंगा पार ! गाँव के ठाकुरों के लड़के, अहीर-कुरमी और चमार लोग लाठी बाँधे हुए सरजू के मेले में गये। उन लठैतों के संग मुरलिया के दोनों लड़के, मोहना और पियारे भी अपनी शक्ति के अनुसार छोटा-छोटा डंडा लेकर गये। दोनों रास्ते-भर गाँववालों के साथ बहके हुए, मुट्ठी बाँध-बाँधकर कहते जा रहे थे कि माई को वहीं मारकर सरजू में परवाह कर देंगे !

सारे गाँव के लठिबन्द लोग मेले-भर में फेरई और मुरलिया को ढूँढ़ते रहे, पर वे कहीं न दिखे। निराश सब लोग गाँव वापस आ गए और गाँव में मुरलिया के आने का रास्ता देखने लगे।

चौथे दिन मुरलिया मधुबन के संग गाँव लौटी। मधुबन लालगंज की ओर नाचने गया हुआ था। मधुबन मुरलिया के संग कैसे ?

दोनों ठाकुर के दरवाजे पर फिर बुलाए गए। सारा गाँव वहाँ

उपस्थित था। चमार लोग बिगड़े हुए खड़े थे। मधुबन के दोनों लड़के आवेश में थे कि वे उन दोनों को अपने घर में अब घुसने न देंगे। घुसें तो मूड़ी काट लें !

"मधुबन, तेरी भेंट मुरलिया से कहाँ हुई ? तू तो लालगंज की ओर नाचने गया था और वह माझे में फेरई के घर गई थी।"

"धर्मावतार ! मुरलिया फेरई के घर जरूर गई थी। वहाँ तीन दिनों तक थी, चौथे दिन मैं सीधे लालगंज से नाच खतम कर वहाँ माझे में पहुँचा।"

"तीन दिन, तीन रात, माझे में फेरई के संग ?"

"हाँ सरकार, फेरई की लड़की सुमनी का गौना था। मुरलिया न जाती तो सुमनी का गौना न होता। अगर गौना न होता तो सुमनी का अनर्थ हो जाता !"

"झूठ है !"

"झूठ है ! सब बनावटी बातें हैं !"

"अच्छा रे मधुबन, तू क्यों गया फेरई के यहाँ ?"

"उसकी मड़ई में उसके उखड़े हुए देवतन बाबा को बसाना था। मैंने वहाँ सवा घंटे कीर्तन किया। फेरई का देवतन उसे अभुआता रहा। खूब गाया, खूब रोया, फिर शान्त होकर बैठ गया। और पंचो ! अब फेरई का घर बस गया। अब हम लोगन से उसका कोई मतलब नहीं। अब वहाँ न मुझे जाना है, न मुरलिया को।"

"और जो अकेली तेरी मुरलिया तीन रात उस अधर्मी फेरई के संग रह गई है, उसका का जवाब है तेरे पास ? गाँव की इज्जत-आबरू कहाँ गयी ? बोल !"

मुरलिया फफककर रो पड़ी। लोग उसकी ओर झपटे, "बदमाश है, बदमाश ! मारो ! छिनरझप्प दिखा रही है ! चोट्टी कहीं की !"

मधुबन अपनी दोनों बाँहें तानकर सबके सामने खड़ा हो गया,

"मुरलिया का पति मैं हूँ, मैं उसे जानता हूँ। मेरे और उसके जीते हमारे शरीर पर कोई हाथ नहीं उठा सकता।"

"गाँव से निकल जाओ !"

अन्धा बिपता तड़पकर बोला, "नहीं निकलेंगे ! क्यों निकलें ?"

मुरलिया ने बिपता को संभाल लिया। वह एक बहुत बड़ा ईंटा सामने के लोगों पर मारने जा रहा था।

मधुबन हाथ जोड़कर सबसे बोला, "तो आप लोगन की इज्जत-आबरू रामायन के उसी धोबी के हाथ में है। किसी के घर औरत अगर चली गई, तो वह खतम हो गई ! पंचो, हमारी इज्जत-आबरू हमारे हाथ में है, हमने उस धोबी के हाथ नहीं बेच रखी है, जिसने···" सहसा किसी ने मधुबन के मुँह पर एक ढेला फेंककर मारा।

पर मधुबन का माथा झुका नहीं। उसने देखा, उसके दोनों लड़के, मोहना और पियारे उन्हें गालियाँ दे रहे हैं, और कह रहे हैं कि वे उन्हें अपने घर में घुसने न देंगे। या तब घुसने देंगे, जब ये लोग गंगा उठाएँ कि ये लोग अब उस फेरई के यहाँ से कभी भी आना-जाना न करेंगे, और अपने यहाँ से इस अन्हरा बिपता को निकार दें ! यह भी वहीं माझे में जाय मरै !

ठाकुर के दरवाजे से लौटकर मधुबन बिपता को संग लिये हुए घर में घुसा और कमर में तबला-डुग्गी बाँधकर देवी का कीर्तन गाने लगा।

मुरलिया माई का कीर्तन नाच-नाचकर उस खँडहर में धार तपावर चढ़ाने लगी :

अब माई बास करब यहि घरवाँ,
तुहिं मोर जनम करम मोर माई
सब जग छाँड़ि लुकाई तोर कोरवाँ···

गौरा-पार्वती

उस रोज भी रानीमाँ का उपवास था।

बीच-बीच में निरन्तर पिछले पाँच-छः वर्षों से पूजा-व्रत तो वह करती ही रहती थीं, किन्तु उस दिन गौरी का व्रत था। 'गौरी-व्रत और विधवा ! हाय रानी बहू तुमको क्या हो गया है ?' दादी कुछ ऊँचा सुनती थीं, अतएव रानीमाँ ने जरा ऊँचे स्वर में कहा, 'मैं न करूँ तो क्या करूँ ! देखा भी तो नहीं जाता।' दादी पास चली आयीं। अस्सी वर्ष की वृद्धा, मुँह में एक दाँत नहीं, पर आँख में अब भी तेज। सिर बे-तरह हिलता रहता था। उसी हिलते सिर के साथ बोलीं, 'सावित्री से कहो, वही गौरी-व्रत रखे ! रखेगी क्यों नहीं ? लड़की फिर क्यों बनी, भगवान से ही मना कर देती।'

'उसे कहाँ इतनी फुर्सत है अम्मा ! आप तो बेकार की बात उठा लेती हैं। सोचिये न, डाक्टरी का काम है। नयी-नयी क्लिनिक खोली है उसने। दिन-रात मरीज़, औरत-बच्चे उसे घेरे रहते हैं।' यह कहते-कहते रानीमाँ ने कुश से पानी की एक बूंद अपनी जबान पर गिरा ली।

गौरीव्रत में ठीक चौबीस घंटे की यही तपस्या—सूरज निकलने से उसका प्रारम्भ और दूसरे दिन सूरज निकलते-निकलते इसकी पूर्ति। गौरी-व्रत का यह विधान रानी-माँ के गुरु बाबा ने पिछली गर्मियों में बताया था—ऋषीकेश में। 'इस व्रत से सावित्री बेटी को निश्चय ही

उसके योग्य वर मिलेगा—जैसे गौरा-पार्वती को शंकर जी मिले थे। बारह वर्ष तक यही व्रत गौरा-पार्वती ने किया था।' गुरू महाराज ने बताया है। दादी ने झुंझलाकर कहा, 'तो गौरा-पार्वती ने यह व्रत किया था न, गौरा की माँ ने तो नहीं।'

रानीमाँ कड़े स्वर में बोलीं, 'तो क्या करूँ, मैं। गौरा-पार्वती को उतनी फुर्सत थी। मेरी बेटी डाक्टरनी है···।'

'डाक्टरनी···डाक्टरनी ! तो डाक्टरनी ही बनी बैठी रहेगी। बड़ी आयीं···?'

रानी माँ और दादी के बीच बातें बढ़ती गयीं। घर का नौकर रनवीर, नौकरानी हिरिया दोनों सहम गये। बरामदे में बैठी दादी रोने लगीं और पूजा के कमरे में रानी-माँ के आँसू नहीं बन्द हो रहे थे।

हिरिया, रनवीर दोनों बाहर माली के पास जा खड़े हुए। माली आर्किड-घर पर अपराजिता की लतर ठीक कर रहा था।

दिल्ली में सितम्बर का महीना। दिन के दो बज रहे थे। लाजपत नगर में डॉ० सावित्री निगम, एम० बी० बी० एस० की वह कोठी बिलकुल शान्त थी। आर्किड-घर को माली ने बड़े यत्न से सुन्दर बना रखा था, पर उसमें जैसे कभी कोई आया ही नहीं। गुलाब, मैग्नोलिया, कारनेशन जैसे अपनी छवि को सहेजे ही रह गये थे। चहारदीवारी के किनारे-किनारे लीची, पपीता, नीबू, कैथ, केले और नन्हे युकलिप्टस पर कितने रंग-बिरंगे पक्षी बैठ-गाकर चले जाते, पर उस बँगले का बैरागी मन उन्हें कभी नहीं सुन पाता। इतने फल-फूल ! इतनी सुख-सुविधा !

नौकर-नौकरानी माली से परस्पर बात शुरू करते कि उसी क्षण मेम साहब, नहीं-नहीं, डाक्टर साहब की कार घर में आती हुई दीख पड़ी। माळी बन्द फाटक खोलने दौड़ा।

नौकर-नौकरानी घर में भाग गये।

कार तेजी से मुड़कर पोर्टिको में सहसा रुक गयी। आस-पास के गमलों में खूब छतनार बढ़े हुए पौधे जैसे सहम गये। पार्लर की सीमा पर रखे हुए क्रोटन, पाम पर एक तेज हवा लहरा गयी। उससे आगे मालती की मोटी लतर जो पोर्टिको के कोने से फैलकर पार्लर की बाहरी सीमा को स्पर्श करती हुई सावित्री के कमरे की खिड़की पर छायी हुई थी और उसके असंख्य फूलों के गुच्छों से जो वहाँ का सारा प्रदेश सुशोभित था, वह जैसे अपनी स्वामिनी को रुककर निहारने लगा।

सावित्री ने घर में प्रवेश किया, तो उसे अचानक दादी रोती हुई मिली। माँ के कमरे में गयी तो रानीमाँ को तपस्विनी की भाँति पूजा में रत देखा। बाल पीठ पर बिखरे थे। आँखें आँसुओं से तर थीं।

वाशबेसिन में हाथ धोते हुए सावित्री ने दादीमाँ के विषय में हिरिया से पूछा।

उसने केवल इतना कहा कि 'माँ जी का गौरी व्रत है। और दादी···?'

रानीमाँ कमरे से बाहर निकलीं। सावित्री तौलिये से हाथ पोंछती हुई दादी के पास जा बैठी।

'क्या दादी जी ?'

'माँ से पूछो।'

'पहले भोजन कर लो बेटी !' माँ ने दूर से ही कहा।

'भूख नहीं है माँ।' सावित्री ने पूछा, 'माँ, तुम्हारा आज कौन-सा व्रत है ?'

"गौरी-व्रत बेटी !'

तभी सहसा दादी फूट पड़ीं, 'यही तो मैंने इससे कहा कि यह

गौरी-व्रत तुम्हारे करने से क्या होगा ? इस व्रत को सावित्री करे, तब न कुछ फल हो ! इस पर तुम्हारी माँ ने मुझे...'

दादी को फिर रोना आ गया। सावित्री सब समझ गयी। माँ को देखा—वह व्रती मुख—जो करुण और तेजमय था, आँखेंभरी थीं।

सावित्री सब बातें दूर-दूर तक समझ गयी। गौरी-व्रत··· चन्द्रायण-व्रत···सत्यनारायण पूजा·· शंकर की उपासना···तुलसी के चबूतरे पर घी का दियना, खील-चन्दन-कपूर का सारा अर्थ।

यह सब कुछ मेरे लिए···सावित्री सोचने लगी, मेरे लिए भी नहीं, मेरे विवाह के लिए, मेरे उस वर के लिए, जिसे मैं आज तक न ढूँढ पायी। वर तो ब्राह्मण ढूंढ़ता है···बीरन और बाबा ढूँढते हैं। और वर कन्या के लिए ढूँढा जाता है। वे ब्राह्मण कहाँ गये ? मेरे बीरन और बाबा, पिता भी तो नहीं। वर और कन्या। मैं अब कन्या कहाँ रही ? मेरी अवस्था पैंतीस वर्ष की हो चुकी है। मैं कन्या नहीं, मैं अपने इतने बड़े 'क्लीनिक—नर्सिंग 'होम'—की डाक्टरनी हूँ—लेडी डाक्टर निगम ! पर मेरा ऋण !

मेरे ये दो भाव-पंख···दादी···और माँ।

ये मुझे डाक्टर से अब दूल्हन बनाना चाहती हैं। ये ठीक ही सोचती हैं···ग़लत मैं सोचती हूँ। मैं हार मानकर इस जीवन को देखती हूँ। और ये दादी-माँ जो अपना सारा जीवन जी चुकी है, जिनके भविष्य में अब कुछ नहीं है—ये कितनी विचित्र हैं ! लगता है ये रोज़ नया जन्म लेती हैं। मेरा जीवन, मेरा है पर इसके कल्याण के लिए तपस्या माँ करती है। मेरे जीवन पर दादी सुख का पहरा देती हैं। जिसके लिए मैं सोचती तक नहीं, उसे सदा ये दोनों यथार्थ देखकर उसके लिए झगड़ उठती हैं। रोती हैं। तप और उपवास करती है।

यह आज से नहीं, पिछले पाँच वर्षों से अखंड तप चल रहा है। पर गृह-कलह के अलावा और कोई फल न मिला। फल कहाँ से हो !

दादी जी ठीक ही तो कहती हैं—व्रत गौरी को करना चाहिए। पर गौरी कौन ? कहाँ है वह, जो व्रत कराता है।

दायीं बाँह में माँ और बायीं ओर दादी को लेकर सावित्री उन्हें हँसाती हुई, हँसने लगी।

हिरिया और रनबीर प्रसन्नमुख बाहर बरामदे में आ खड़े हुए। माली गीली मिट्टी में सने हाथ लिए उनके पास चला आया।

भीतर से मालकिन बहन की आवाज़ आ रही थी—'दादी जी, आज से रानीमाँ का व्रत खत्म। गौरी-व्रत मैं करूँगी, ठीक है न ! गौरा-पार्वती को जरूर शंकर मिलेंगे।' यह कहते-कहते उनकी एक तेज़ हँसी सुनायी दी।

फिर कहने लगीं—'दादी जी, माँ···सुनो गौरा-पार्वती की वह तपस्या किस युग की है ? सतयुग या त्रेता ?'

'किसी भी युग की हो !'

'भाग्य के लिए सब युग एक समान हैं बेटी !'

—'अच्छा सुनो दादी-माँ ! यह उन्नीस सौ साठ है। और मैं इस घर की सम्पन्न बेटी हूँ—धन, कर्म, पद सब मेरे पास है। तपस्या ही उस गौरा के लिए वर था। मेरे लिए वर कुछ भी नहीं है। तो तपस्या का प्रश्न ही नहीं उठता। विश्वास करो, दादी-माँ ! कल के अखबारों में मैं अपने विवाह का विज्ञापन दे दूँ न ? यह सत्य कह दूँ कि डॉ० सावित्री निगम, माडर्न क्लीनिक फॉर वीमेन की स्वामिनी, लेडी डाक्टर को वर चाहिए तो फिर परसों से ही देख लेना, कितने वरों की एक साथ वर्षा होने लगती है।'

यह कहते-कहते सावित्री सहसा चुप हो गयी।

दादी और माँ बेटी का मुँह देखने लगीं।

सावित्री उन्हें अपने कमरे में लाकर बोली, 'यही चाहती हो माँ ?'

चट दादी बोलीं, 'नहीं-नहीं, वह अखबारवाला विवाह नहीं।'

'फिर कैसा विवाह ?'

माँ ने कहा, 'ढूँढा हुआ विवाह बेटी ! कमी किस चीज की है ? तुम जैसी श्रेष्ठ कन्या···'

सावित्री ने न चाहते हुए भी टोका, 'कन्या नहीं माँ, लड़की।'

'हाँ-हाँ, लड़की ही ! किसकी कमी है। यह बँगला, दो मकान, चाँदनी चौक में। तुम्हारे विवाह के लिए तुम्हारे पिता का बैंक में अलग से जमा किया हुआ बीस हजार रुपया ! मोटर···गाड़ी···बाग-बगीचा, नौकर-चाकर, अपना वैसा अस्पताल और बैंक में···'

सावित्री ने बढ़कर माँ के तप्त मुख पर अपना हाथ रख दिया, 'गऊ माँ !'

'माँ किन्तु सोचो न, गौरा-पार्वती के पास तो ऐसा कुछ नहीं था। सब कुछ त्यागकर वह अकेली ही थीं। पर वह थीं...'

सावित्री का स्वर अपने आप गिर गया। जैसे उसके एक प्रश्न के हजारों उत्तर तत्काल उसी क्षण अपने आप उसे मिल जाते थे।

संध्या समय क्लीनिक जाते समय सावित्री ने पुनः एक बार दादी और माँ का शिशुवत् स्पर्श करते हुए कहा, 'विश्वास रखो, तुम्हारी यह गौरा अवश्य वर पायेगी ! तुम्हारा तपस्या, व्रत और विश्वास कभी झूठ नहीं होंगे ! उस श्रेष्ठ फल के लिए मैं भी व्रत करूँगी !'

डॉ० सावित्री के अपने निकट सम्बन्धियों में एक थे मामा—कौशल बिहारी निगम, कानपुर में एडवोकेट थे। दूसरे थे मौसा जी—इन्द्र प्रताप, मेरठ में कलक्टर की पेशकारी से रिटायर होकर वहीं होमियोपैथी की प्रैक्टिस कर रहे थे।

ये लोग भी सदा से प्रयत्नशील थे कि सावित्री का विवाह हो जाय। पर कभी सफल न हो सके। किन्तु ये लोग कभी निराश न हुए। जानते थे कि जिस दिन सावित्री की पसन्द का वर मिल जायगा, वह निश्चय ही स्वीकार कर लेगी। कठिनाई वर पाने की नहीं है—वर

तो एक-से-एक मिलते हैं—धन, पद और रूप तीनों जहाँ एक जगह हों, उस पर कौन नहीं आकर्षित होगा ? अनेक वर आकर्षित होकर मिले—एक थे डॉ० माथुर एम० एस, सर गंगाराम हास्पिटल के सर्जन। एक थे मिनिस्ट्री ऑफ फूड एंड एग्रिकल्चर के अंडर सेक्रेटरी, पैंतालिस वर्ष के विधुर—नाम था एच० के० श्रीवास्तव। एक थे मेजर चौधरी, और...

सावित्री की कार जब बँगले से अपने क्लीनिक की ओर चली, और जब वह रिंग रोड को पार कर लाजपत नगर के दक्खिनी क्षेत्र में आने लगी, जहाँ डॉ० सावित्री का 'क्लीनिक एंड नर्सिंग होम' था—अनायास सावित्री की कार रिंग रोड पर घूम गयी। मथुरा रोड की क्रॉसिंग से लौटकर फिर उसी रिंग रोड पर—जैसे किसी निर्जन वन में भटकी हुई तितली। कुतुब रोड तक पहुँचते-पहुँचते रात हो गयी। इस उदासी में उसे सब याद आये—जैसे घर छोड़े हुए बैरागी को बहुत कुछ याद आये। पिछले दिनों कानपुर से मामा जी यहाँ आये थे। वह एक दिन अपने साथ युनिवर्सिटी के एक लेक्चरर को उसके क्लीनिक पर लाये थे—डॉक्टर सतीनाथ श्रीवास्तव। चालीस वर्ष की अवस्था, सुन्दर पुरुष, उन्नत ललाट, सरल सौम्य व्यक्तित्व, खादी का कुर्ता और धोती पहने हुए। चार वर्ष तक इलाहाबाद युनिवर्सिटी में अँग्रेजी के अध्यापक, अब पिछले वर्ष से दिल्ली विश्वविद्यालय में आये हुए। उस दिन केवल परस्पर प्रणाम हुआ था। मामा ने बताया था—'डाक्टर सतीनाथ उसी की कसौटी और रुचि के हैं।'—मामा ने यह भी बताया था कि सतीनाथ के माँ-बाप बचपन में ही दिवंगत हो गये थे। जीवन में केवल उनकी एक बहन थी। आत्मबल से स्वयं इतनी उच्च-शिक्षा प्राप्त की और साथ में बहन को एम० ए० तक पढ़ाया। बहन की शादी बनारस में एक इन्जीनियर से की, और उसके बाद दिल्ली चले आये।

कानपुर जाते समय मामा जी ने डॉक्टर सतीनाथ का टेलीफोन नम्बर लिखवा दिया था—२४९५७, दिल्ली विश्वविद्यालय, रेजीडेन्शियल क्वार्टर्स।

अगले दिन सावित्री ने क्लीनिक से सतीनाथ को फोन किया, और संध्या समय उनके निवास-स्थान पर गयी। घर में केवल एक लड़का नौकर था और शेष किताबें थीं। सावित्री ने यह भी देखा कि ड्रॉइंग रूम से सटे हुए दूसरे कमरे में एक चौकी बिछी थी, जिस पर मृगचर्म पड़ा था। सामने ऊँचे आसन पर कृष्ण, राम और दुर्गा जी की मूर्ति-चरणों पर बिखरे हुए ताजे पुष्प, अगुरु धूप और चन्दन की जली हुई बत्तियाँ और सुगंधित अंश। दायीं ओर दीवार से लटके हुए दो पास-पास चित्र, जिन पर मालाएँ चढ़ी हुईं—मेरी माँ और पिता जी।

सावित्री ने सतीनाथ के मुख को देखा, फिर उन चित्रों को, फिर आग्रह के स्वरों में कहा—जाइये, तब तक आप तैयार हो लीजिये··· कनाट प्लेस चलेंगे, मैं यहाँ खड़ी हूँ तब तक।

सतीनाथ चले गये। सावित्री का माथा दुर्गाजी की मूर्ति के सामने अपने आप झुक गया। पूजा के स्वर में भीतर-ही-भीतर उसने कुछ कहा और वहाँ चरणों पर समर्पित किये हुए पुष्पों में से एक को उठा कर उसने अपने नमित सिर पर छुआ लिया। सावित्री के लिए वह अनुभूति, और समर्पण-भाव, पूजा के स्वर तथा मंत्र-मुग्ध हो चुप रह जाना—सब अभूतपूर्व, मौलिक, प्रीतिकर और अनिर्वचनीय था। उसे लगा, यही उसका घर था, घर है। वह उतनी बड़ी क्लीनिक, वह नर्सिंग होम, वह उतना बड़ा बँगला, कार, वह बैंक में जमा किया हुआ धन, वह पद, वह स्थान— वे सुख-साधन सब कुछ उसके आगे अस्तित्व-हीन हैं। यही मूल है—उत्स है, वर है।

कार पर अपने बगल में उन्हें बैठाये हुए, सावित्री कनॉट प्लेस की

ओर चली। उसे लगा, कार सतीनाथ चला रहा है, और वह बगल में बैठी है।

संध्या का समय। आसमान में बड़े-बड़े धवल बादल इधर-उधर रुके थे—बल्कि बैठे थे, जैसे पलँग पर अतिथि जमकर बैठे, खूब धुले-धुलाये कपड़े पहने हुए।

दोनों चुप थे।

सावित्री जान-बूझकर चुप थी—स्वेच्छा से। उसकी कामना हो रही थी कि सतीनाथ साधिकार उससे पूछे—आप चुप क्यों हैं ?··· नहीं··तुम चुप क्यों हो ?

और वह आँख मूँदकर और भी चुप हो जाय।

पर सतीनाथ ने कुछ न पूछा। विवश होकर सावित्री ने ही पूछा, 'इलाहाबाद से दिल्ली अच्छी लगती होगी, क्यों ?'

'क्यों, आप इलाहाबाद में रही हैं क्या ?'

'रही तो नहीं, पर एक बार देखा जरूर है, जब मैं नाइन्थ क्लास में पढ़ती थी। पिताजी मेरे रेलवे कन्ट्रैक्टर थे—कोई पुल बनवा रहे थे उधर।'

'इलाहाबाद रहने की जगह है, देखने की नहीं।'

सावित्री चुप हो गयी। जैसे उससे बात-से-बात बढ़ी ही नहीं। न जाने कहाँ से सतीनाथ के इतने नन्हें से सम्पर्क में ही उसके भीतर इतना शील ··

रानीमाँ ने पूछा—आज का नाश्ता ?

सावित्री ने माँ के गले में शिशुवत् हाथ फेरते हुए कहा—आज मेरा गौरीव्रत है माँ !

दादी का कान तेज था, दूर से ही मुदित होकर हँस पड़ी।

क्लीनिक में सतीनाथ का टेलीफोन आया। हेड नर्स मिस बॉब ने बताया कि मिस साहब का आज 'फास्ट डे' है।

'फास्ट डे' ! कैसा फास्ट ! सतीनाथ ने रेजीडेन्स पर फोन किया। फोन माँ ने उठाया। सतीनाथ की आवाज सुनते ही उन्होंने अजब अधीरता से बेटी को पुकारा—सब्बो ··अरे, उनका टेलीफोन है !

सावित्री ने फोन ले लिया—मेरा उपवास·· नो...नो नॉट दैट ! यस, यस...गौरी-व्रत...कुछ नहीं...ऐसे ही, रियली, थैंक्यू...कल भेंट होगी...ठीक, अच्छी बात है...और सब ठीक है न ? अच्छा प्रणाम... अरे, क्लास जा रहे हैं क्या...सुनिये न...अच्छा कोई बात नहीं...ओह हो गौरी-व्रत ! अच्छा-अच्छा !

सावित्री ने फोन रखकर आँचल से अपना मुँह सुखाया। फिर दौड़कर अनायास ही आईने में अपना मुख देखने लगी। सहसा चैतन्य होकर अपने आप में शरमा गयी—थोड़ा झुँझलाने का भी जी हुआ—यह क्या तमाशा है सब्बो ! तू क्या कोई कालेज के इन्टरमीडियट की लड़की है ?

इंटरमीडियट की लड़की !

इंटर की सावित्री !

सहसा उसके समूचे अंतस में कुछ सुलग उठा। वह कमरे से झट निकलकर माँ के पास गयी। वहाँ न रह सकी। दादी के पास न बैठ सकी। असाधारणतः आज वह हिरिया से बातें करने लगी, फिर रनबीर, और अंत में माली। पर जिससे पीछा छुड़ाकर वह जितना ही तेज भागना चाहती थी, वह उतना ही प्रखर तेजस्वी होकर, उसे अपने में समेट लेना चाह रहा था।

और अपनी मुक्ति के लिए गौरी-व्रता सावित्री क्लीनिक चली गयी।

इतवार को सावित्री सतीनाथ के साथ नेशनल गैलरी में मॉडर्न आर्ट देखने गयी। इसके पहले उसने अपने देश के इतने महान चित्रकार —हुसेन, रवीन्द्रनाथ, सतीश गुजराल, हेबर, नन्दलाल, अवनी सेन, जामिनी राय और अमृता शेरगिल की कला-कृतियाँ कभी नहीं देखी

थीं। अब तक उसने आपरेशन थियेटर ही देखा था—दवा और चीरफाड़, रोगी और मृत्यु। सतीनाथ के साथ उसने जीवन में पहली बार उन श्रेष्ठ चित्रों को देखकर यह अनुभव किया कि जीवन कितना मोहक है। कलाकृतियों में कितना दर्शन और संगीत है। उसने पाया कि उन चित्रों में, उनके रंगों और आकृतियों में संगीत की मधुरता, और पीड़ा का अभेद्य जीवन रस और मन का आलोक है, जो हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अचानक उजागर करता है।

दिन भर सतीनाथ के साथ वह एक अपूर्व मानसिक उल्लास से पूरित रही। उससे अलग होकर वह न अपने घर जाना चाहती थी, न अपने नर्सिंग होम। उसे लग रहा था, वह वैसी ही नहीं है जैसी वह पिछले दस वर्षों से एक ही तरह, एक ही स्तर पर, जी रही थी। वह जैसे अपूर्व और असीम होती जा रही है। उसके मन में एक क्षितिज है—एक ही नहीं, असंख्य क्षितिज हैं उसके अंतस में—कोई बस उन क्षितिजों के सामने से एक-एक पर्दा उठाता चल रहा है।

सावित्री ने रात को सतीनाथ के संग उसके घर पर ही भोजन किया। चौके में बैठकर उसने स्वयं ही भोजन बनाया था।

सतीनाथ के सोने के कमरे में एक छोटे से बुक-रैक पर एक फोटो रखी थी—परस्पर गले में बाँह डाले दो सुन्दर लड़कियों का चित्र। सावित्री परम आकर्षण से उसे एकटक देखती रही और जामिनी राय के उस श्रेष्ठ-चित्र—दो बहन—की उसे सुधि होती रही। पावन-सुन्दर! सतीनाथ ने बताया—वह घुँघराले बालोंवाली उसकी बहन सुजाता है, और दूसरी उसकी सहेली ममता है...वह आगे ममता के लिए कुछ कहने जा रहे थे कि वाणी जैसे काँपकर सहसा टूट गयी।

'कितनी गंभीर सुन्दरता है! अब यह ममता कहाँ है?'

सावित्री अबोध दृष्टि से मूक-उदास सतीनाथ को देखती रह गयी। फिर उसने एकदम बात टाल देनी चाही—उठो चलो, बड़ी मोहक

चाँदनी है—जिसे तुम शारदीया कहते हो, इसमें कहीं घूम आयें। जमुना के किनारे-किनारे—अपर बेला रोड से, लोअर बेला रोड तक। उठो न...चलो···। सतीनाथ ने अचानक आज पहली बार सावित्री का दायाँ हाथ पकड़कर अपने सामने बिठा लिया—सुनो इस ममता की कहानी। तुम भी सुन लो—ममता मेरी भी सहेली थी। ममता शुक्ल। ये दोनों एक संग बी० ए० में पढ़ती थीं। और ये दोनों एक ही संग होस्टल में भी थीं। सुजाता के संग यह भी मेरे पास ही पूरी छुट्टियाँ बिता देती थी, बहुत ही सुन्दर गाती थी—जितनी सुन्दर यह फोटो में दिख रही है न, इससे कई गुना सुन्दर। विशेषकर मीरा के भजन और मीर के कलाम—'राज़ो-नियाज़'—सख्त काफ़िर था जिसने पहले 'मीर', मज़हबे इश्क इख्तियार किया। खूब गाती थी। उसी ने मुझे ग़ज़ल का अर्थ बताया—प्रिया से बात करना।—सुनो तुम्हीं से आज बता रहा हूँ, ममता शुक्ल थी, मैं कायस्थ हूँ। ममता के माँ-बाप जितने धनी थे, उससे अधिक मन के धनी थे। वे ममता को जितना अधिक प्यार करते थे—अकेली लड़की थी वह—उससे अधिक वे उसका आदर करते थे। खूब ईमानदारी से वे ममता को समझते थे। यूँ ममता को समझ लेना आसान नहीं था। आपने ममता के लिए सही शब्द इस्तेमाल किये—गंम्भीर-सुन्दरता।

'और जो मुझे प्रीतिकर था, ममता को प्रिय था, मेरी बहन सुजाता का जो स्वप्न था—हमारा विवाह—उसके लिए ममता के माँ-बाप भी प्रसन्न थे। बस प्रतीक्षा थी···'

यह कहते-कहते सतीनाथ उठ खड़े हुए। बाहर मानो असंख्य धवल धार से चाँदनी बरस रही थी। सावित्री के साथ, वह बाहर आ खड़े हुए। कहीं पास से ही रातरानी की मादक गंध आ रही थी, और सामने ही बिजली के तार पर बैठा हुआ उलूक का जोड़ा चें कें चें कें कर रहा था।

सतीनाथ के मुँह से सहसा फूट पड़ा—किन्तु ··और···किन्तु ममता का उसी बीच स्वर्गवास हो गया।

वह कहानी एक झटके में इस तरह खत्म होगी, सावित्री इस चरमसीमा के लिए जरा भी तैयार न थी। उसका माथा सहसा घूमने लगा और अवश सतीनाथ के कंधे पर हाथ रखे वह खड़ी रह गयी। सावित्री का दायाँ हाथ पकड़े, वह फिर उसी कमरे में चला आया। बड़ी देर तक दोनों चुप बैठे रहे।

सतीनाथ ने कहा—'लगता है, तुम्हें वह भी बताना होगा। हुआ यह कि...कि···सुनो, हुआ यह कि...ममता का एक चचेरा भाई था—उमादत्त शुक्ल, एम. ए. प्रथम वर्ष का विद्यार्थी। ममता के बहाने होस्टल आते-जाते सुजाता से वह अपने आप को बहुत निकट सोचने लगा। उसने दो चार बार सुजाता को पत्र भेजे। सुजाता ने वे पत्र मुझे दे दिये। ममता ने उमादत्त को बहुत डाँटा-फटकारा। उसका होस्टल में आना बंद करवा दिया। मैंने भी एकाध बार उमादत्त को समझाया। पर उसने बड़ा अशुभ रूप ले लिया।

'कन्वोकेशन के दिन थे। सुजाता और ममता दोनों रात को एक संग पिक्चर देखकर लौट रही थीं। वह रिक्शावाला उमादत्त का पटाया हुआ आदमी था, जिस पर अनजाने ही दोनों बैठीं। रात के दस बजे थे। दोनों पिक्चर की बातें करते-करते शरद बाबू के 'चरित्रहीन' में किरणमयी और उसके दिवंगत पति हारान के चरित्र की परिचर्चा करने में उलझ गयीं।

'सुजाता ने हारान के चरित्र का पक्ष लिया।

'तभी ममता किरणमयी की ओर से बोली—वहाँ उस भावभूमि पर किरणमयी और हारान दोनों एक हैं। हारान की मृत्यु के बाद किरणमयी बार-बार हारान की ही कही हुई वह बात सोचती है—और उस 'और कुछ' को ढूँढ़ कर किसी दिन भी तुम न पाओगी। वह तुमको

वास्तव बनाये रखेगा, आकांक्षा जगायेगा, किन्तु परितृप्ति न देगा। रास्ते की कहानी ही सुनावेगा, किन्तु रास्ता दिखा न सकेगा।

'उनकी भाव-तन्द्रा अचानक तब टूटी जब उनका रिक्शा चैथम लाइन्स को पार कर दायीं ओर बड़े सूने मैदान की एक पगडण्डी पर मुड़कर सामने एक मकान के पास रुक गया। और सामने देखा तो वही उमादत्त शुक्ल, दायें हाथ में कटार लिए। उसने झपटकर ममता का दायाँ हाथ पकड़ रिक्शे से नीचे खींच लिया और स्वयं रिक्शे पर बैठकर मुड़ा। सुजाता चीखी। रिक्शेवाले ने चाल तेज की। ममता ने पीछे से रिक्शे को थाम लिया। उमादत्त से वह लड़ गयी। उसी समय सड़क पर से एक मिलिट्री कार गुजर रही थी। सुजाता की चीख ने कार रोक दी। निर्भय पशु उमादत्त अपनी कटार को ममता के कलेजे में उतार कर वहीं बंदी-सा खड़ा रह गया। बेहोश ममता को उसी कार से सुजाता हास्पिटल ले गयी। वहीं से उसने मुझे सूचना दी। वह रात, अगला दिन और दूसरी रात हम ममता के सिरहाने-पैताने बैठे रहे, उसे बहुत पुकारा पर वह फिर न बोली।'

बँगले के बाहर की चाँदनी अहाते के पश्चिम ओर सिमट गयी थी। हवा ठंडी हो गयी थी। उलूक दम्पति वहाँ से उड़ गये थे। रेड फोर्ट से गजर की आवाज़ आयी—रात के तीन बजे थे।

वर्षान्त के बादल से उस दिन आसमान छाया हुआ था। पिछली रात को वर्षा भी हुई थी। अशोका होटल के बैंकेट हाल में डिनर और डान्स के प्रोग्राम में सावित्री सतीनाथ को संग लिए हुए शामिल होने जा रही थी। मनीपुर की कुमारी इला और अमला का मनीपुरी नृत्य था। युनिवर्सिटी से कार पर चलकर कश्मीरी गेट पार करते करते सतीनाथ ने सावित्री से कहा—'कल तुम्हारा फिर गौरी व्रत था! क्यों? बताया नहीं तुमने, यह तुम्हारा गौरी-व्रत क्या है?'

'तुम्हें पाकर मैं अब धर्मनिष्ठ हो गयी हूँ'—सावित्री ने कार की

गति धीमी कर दी, 'गौरी-व्रत···माँ ने बताया है, बल्कि यह विश्वास मुझे माँ का दिया हुआ है कि गौरा पार्वती ने अपने वर के लिए यही व्रत किया था—गौरीव्रत वही है। मेरा भाग्य देखो, तुम्हारा नाम सतीनाथ है।'

'है तो ! किन्तु तुम्हारा नाम तो सावित्री है। सावित्री तो सत्यवान की थी—क्यों ?'

सावित्री ने अजब दृष्टि से सतीनाथ को देखा, फिर वह सामने शीशे से दूर जामा मस्जिद के ऊपर के घने बादलों को देखने लगी। धीरे से बोली—'सावित्री नाम माँ का दिया है, तुम मुझे गौरी की संज्ञा दोगे, क्यों ? क्या मैं उस योग्य नहीं हूँ ? बोलो···!'

'और यदि मैं ही स्वयं उस सतीनाथ की संज्ञा के योग्य नहीं हूँ तो ?'

'वह संज्ञा तो तुम्हें जन्म से ही मिली है !'

'जन्म से क्या होता है ? असली जन्म-मरण तो बीच में आता है जब मनुष्य अन्तस से एक दूसरे के सम्पर्क में आता है।'

सावित्री ने सतीनाथ को बिल्कुल अपने से सटा लिया—और उसकी इच्छा होने लगी कि वह उसे शिशुवत् अपने अंक में छिपा ले, और उसकी सारी उदासी को मातृवत् सुखा ले। उसका मन कहीं इससे आगे बढ़ने को तैयार न था। सतीनाथ का उस क्षण का वह संस्पर्श, वह सान्निध्य अद्भुत था। उसके सामने अशोका होटल, वहाँ का वह डिनर और डान्स सब अर्थहीन दिखा। सहसा वह अपने रास्ते से लाजपत नगर की ओर मुड़ गयी।

'सुनो सतीनाथ...!'

'कहो गौरा...!'

और दोनों को हँसी आ गयी। सावित्री फिर लजा गयी। सामने सफ़दरगंज टॉम्ब था। बायीं ओर जोरबाग में मुड़कर उसकी कार रुक गयी। सतीनाथ...सतीनाथ...

सावित्री ने अपने घूमते सिर को उसके अंक से टिका लिया, फिर माथे को उसने सतीनाथ के अंक में गाड़ दिया। सतीनाथ ने अत्यन्त स्नेह से कहा—'तुम घर चल रही थीं न, चलो घर चलें !'

सावित्री कुछ न बोली—उसी तरह सोये हुए शिशु की भाँति पड़ी रही। ऊपर से बहुत ही तेज़ आवाज़ करता हुआ कोई हवाई जहाज़ उड़ गया।

घर पहुँचकर अपने कमरे में बैठकर सावित्री ने सतीनाथ को दिखाया—बाहर पोर्टिको से लेकर उसकी खिड़की तक फैली हुई मालती की डालियों के बीच एक स्थान पर बुलबुल दम्पति ने छोटा-सा घोंसला बना रखा था। आज से कुछ महीने पहले ये पति-पत्नी सहसा इस खिड़की के सामने उस बेगमबेलिया पर आ बैठे। कुछ देर चुप-चाप इधर-उधर लम्बी गर्दन कर चौकन्ने से देखते रहे। फिर पंखों को फड़फड़ा कर झारा—जैसे बहुत दूर देश के यात्री हों वे। फिर उड़कर उस कमल भरे टैंक के किनारे पानी पिया, और यहाँ इसी मालती लता पर बैठकर दोनों ने खूब गाया।—तुम भी तो कुछ जरूर गाती होगी। सतीनाथ ने बड़े स्नेह से पूछा।

'मैं...मैं...' सावित्री अपने समूचे जीवन की डोर को छूती, टटोलती हुई चली गयी—उसने कब गाया है—? उसे अपनी उस जीवन डोर में कहीं भी कोई ऐसा स्थान न मिला।

'पर तुम्हें पाकर मैं अब गाऊँगी ?' सावित्री ने भरी आँखों से कहा।

उसी समय रानीमाँ ने भोजन के लिए दोनों को भीतर बुला लिया। भीतर मेरठ के मौसाजी भी डिनर टेबुल पर मिले। इससे पूर्व दो बार वे और भी सतीनाथ से इसी घर में मिल चुके थे।

टेबुल पर रानीमाँ और मौसाजी की बातों का सिलसिला देखकर सावित्री वहाँ से कुछ पहले ही उठ गयी। बातें सावित्री और सतीनाथ के ब्याह की थीं।

बातों में सतीनाथ की रुचि थी।

और उस घर में एक अजीब आनन्द-आह्लाद का वातावरण छाने लगा।

भोजन के बाद सतीनाथ सावित्री के कमरे में आया। सावित्री वहाँ न थी। उसने सावित्री के पलँग के सिरहाने दो पुस्तकें देखीं—एक मीरा के भजन, दूसरी मीर के कलाम। सावित्री वही ममता है।

सावित्री और ममता !

सतीनाथ उन पुस्तकों को थामे हुए बाहर की रोशनी में मालती के कुंज में बुलबुल के उस नन्हे से घोंसले को देखने लगा। उसी समय हाथ में रजनीगंधा के ताजे पुष्प लिए हुए सावित्री आयी और देहरी पर ही शरमा गयी।

सावित्री के हाथ से उस पवित्र पुष्प का उपहार लिए हुए सतीनाथ वापस युनिवर्सिटी जाने को था।

'यहाँ नहीं रुकोगे ?' सावित्री ने काँपते स्वर से कहा।

'अभी नहीं !' सतीनाथ ने रजनीगंधा के पुष्प के गुच्छे को सावित्री के सिर से छूते हुए कहा।

'जैसी तुम्हारी आज्ञा !.....चलो मैं किन्तु तुम्हें छोड़ आती हूँ।'

'कहाँ, परेशानी होगी तुम्हें, टैक्सी से चला जाऊँगा।'

'इस कार को वही टैक्सी समझ लेना, और मुझे ड्राइवर।'

'और कीमत ?'

'हम दोनों चुका लेंगे !'

दोनों हँस पड़े।

कार मथुरा रोड से वेलेजली रोड पर चली। सावित्री ने सतीनाथ से कहा—'तुमने मुझसे आज तक यह कभी नहीं पूछा—लोग मुझसे सबसे पहले यही पूछते थे—अब तक आपने शादी क्यों नहीं की ?'

'फिर आप क्या उत्तर देती थीं ?'

'मैं उन्हें उत्तर देने की जरूरत ही नहीं अनुभव करती थी। उनकी बातों का मेरे लिए उतना ही महत्त्व था—जैसे किसी पार्टी में अनजाने से यह बात—आजकल का 'वेदर' न जाने कैसा हो रहा है ?—बात और बात—सर्व अर्थहीन !'

सतीनाथ ने कहा, 'और मेरे लिए वह बात तुम्हारे प्रति कोई प्रश्न ही नहीं दीखती !—मैं समझता हूँ, विवाह कहीं भीतर से होता है—बाहर तो केवल तमाशा है—कर्मकांड भी नहीं !'

'पर मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि तुम्हारे प्रति समर्पण में कहीं कुछ भी 'मेरा' न रह जाय—जिस तरह इतने दिनों में तुमने 'अपना' सब कुछ मुझे दे दिया, मेरा भी धर्म है, सब कुछ मैं भी तुम्हें दे दूँ। ताकि मेरा-तुम्हारा 'हमारा' हो जाय।'

सामने से आकाश निरभ्र हो गया था। वहाँ एक ही जगह बहुत से सितारे जैसे थाल से उँडेल दिये गये थे। सतीनाथ की दृष्टि वहीं टँगी थी।

सावित्री अजब धर्म-स्वर से कहती जा रही थी—'हाईस्कूल मैंने कानपुर से किया। तब पिताजी वहीं थे। रेलवे का कोई बहुत बड़ा कन्ट्रैक्ट ले रखा था उन दिनों। पिताजी ने मेरे लिए एक ट्यूटर रखा—बी० एस-सी० प्रथम वर्ष का एक छात्र—गोपीकृष्ण नाम था उसका। यू० पी० बोर्ड के हाईस्कूल में उसे फर्स्ट मिला था, इण्टर में फर्स्टक्लास सेकेन्ड—बड़ा ही होनहार, प्रतिभाशाली। उसकी पढ़ाई से मैं भी हाई स्कूल में फर्स्टक्लास पास हुई। इण्टर सांइस में भी वही मेरा ट्यूटर था। तब उससे मेरी अक्सर लड़ाई हो जाती थी। एक दिन तंग आकर मैंने माँ से भी कह दिया—मुझे ट्यूटर नहीं चाहिए। अगले महीने से गोपी का मेरे घर आना बन्द हो गया। लेकिन मैं सन्ध्या समय—जिस वक्त वह मेरे पास पढ़ाने आया करता था—उसके लिए बेचैन हो जाती थी। अकेली मैं रोने लगती थी। पिताजी ने

फिर गोपी को बुला लिया। मैंने पैर छूकर उससे क्षमा माँगी। उसके बाद से मैं उसके लिए अच्छे-से-अच्छा खाना बनाकर खिलाती और उससे मिलने के लिए सदा राह तकती। पढ़ाई-लिखाई के अलावा उसने कभी भी मुझसे कुछ नहीं कहा—जैसे वह मुझसे कितना बड़ा और महिम है। हाँ, वह मुझे अक्सर डाँट जरूर दिया करता था। अजीब अपनापा था उसका। इण्टर फाइनल की बात है। दिसम्बर के दिन। गोपी ने एक दिन मुझे सोने की चार चूड़ियाँ और एक लेडीवाच उपहार में दिया। मैं हैरान रह गयी। यह क्या है? कहाँ मिला उसे इतना धन? मैं जितना ही उस पर बिगड़ी, मन में उतनी ही प्रसन्न थी—अहोभाग्य अनुभव करती। और एक दिन मैंने उसे एक पत्र दिया—प्रेम-पत्र, और डरकर घर में जा छिपी। लौटी तो देखा कमरे में गोपी नहीं है, केवल मेरा वह पत्र पड़ा है—छोटे-छोटे टुकड़ों में फाड़ा हुआ।'

सावित्री की कार रेडफोर्ट के शुरू में ही बाईं ओर जैसे अजान में ही रुक गयी थी। कार की हेडलाइट जल रही थी और उसके प्रकाश-मार्ग में कीड़े उड़ने लगे थे।

सावित्री का स्वर भारी हो गया था—'अपने उस फटे हुए पत्र को देखकर मैं गोपी पर गुस्से से लाल हो गयी। अगले दिन जैसे ही गोपी अपने समय से मेरे कमरे में आया—मैंने उसका वह उपहार उसे वापस कर दिया। गोपी ने मुझे एक बेधती दृष्टि से देखकर अपने उस उपहार को वहीं फर्श पर तोड़-मरोड़ डाला। मैंने उसे पकड़ना चाहा, पर वह मुझे झिटककर चला गया। और···'

सावित्री की गाड़ी सहसा स्टार्ट होकर बहुत तेजी से आगे बढ़ गयी। कश्मीरी गेट, कुदैसिया गार्डन, अलीपुर रोड, ओल्ड सेक्रेट्रियट।

'और···?' सतीनाथ ने पूछा।

'और···' गाड़ी सहसा फिर रुक गयी, 'और दूसरे दिन ठीक उसी संध्या समय मुझे सूचना मिली कि गोपी ने आत्महत्या कर ली!'

यह कहते-कहते सावित्री सिसककर रो पड़ी। सतीनाथ ने उसे सांत्वना देनी चाही। पर उसका रुदन रुकता ही न था—अवश थी जैसे वह।

सावित्री सतीनाथ के अंक में निःशब्द रो रही थी; और सतीनाथ के सामने जैसे ममता करुण स्वर में मीर की ग़ज़ल गा रही थी—'सख़्त काफ़िर था जिसने पहले 'मीर', मज़हबे इश्क़ अख़्तियार किया।'

सतीनाथ को याद आया—सावित्री के गार्डन में युक्लिप्टस के दो सुकोमल वृक्ष थे—जिसका नाम उस दिन सावित्री ने गोपी कृष्ण बताया था।

अगले दिन सावित्री को पता चला कि सतीनाथ अचानक कहीं दिल्ली से बाहर चला गया। चौथे दिन वह लौटा। सावित्री सुबह उसी के पास आयी। नौकर ने बताया कि साहब यूनिवर्सिटी क्लास लेने चले गये।

सावित्री सतीनाथ के कमरे में बैठी हुई उसकी प्रतीक्षा करने लगी।

उसने देखा पलँग के पास टेबुल पर सुजाता और ममता का वही चित्र और पलँग पर एक डायरी पड़ी थी। सावित्री अनायास उसे उठाकर उलटने लगी—उसमें सतीनाथ का लिखा हुआ एक पृष्ठ था :

—'सावित्री की असली शादी हो चुकी है। मेरी भी हो चुकी है। सावित्री और गोपी कृष्ण। सतीनाथ और ममता। पर अब शादी नहीं—विवाह और विवाह। विवाह औरत की आत्मा और मन में नहीं है—वहाँ केवल प्रेम है, विवाहहीन प्रेम, जो हो चुका। विवाह स्त्री के रक्त में है—यह उसका स्वार्थ है, और कुछ नहीं।—एनी वोमन शुड मैरी—ऐन्ड नो मैन। और पुरुष? और मैं···?—सावित्री

तुम कोमल हो, सुन्दर हो। पर तुम डॉ० सावित्री भी हो—लखपती स्त्री—तुम्हीं ने मुझे जबरन बताया था कि तुम्हारे पिता की कमाई हुई उतनी सम्पत्ति है। बैंक में उतना सुरक्षित धन। तुम्हारे भीतर गोपीकृष्ण हैं, सिर पर तुम्हारे धन-स्थान का उतना बोझ है। क्या तुम मेरे संग चल सकोगी ? पर कैसे चल पाओगी ? मेरे भीतर, मन और माथे पर ममता का स्थान है। वह मुझसे कहती है—उस दिन से ही—जब तुमने निष्कपट होकर मुझे अपना अन्तःसमर्पण दिया था कि··· हम दोनों ही वह नहीं हैं, जो बाहर से दिखते हैं। हमारे भीतर हमारे धर्म बैठे हैं। उनसे पूछो कि जो करुणा हमने अपने उस प्रेम में भोगी है, और जिनकी छायाओं से हमारे मन की घाटियाँ भरी पड़ी हैं, क्या हम उनका यह सुन्दर फल अभी पा जायेंगे ? पूछो उससे जरा ?'

किताब में उसी तरह वह पृष्ठ बंद कर सावित्री सीधे अपने घर चली आयी।

रानीमाँ ने बेटी से भोजन के लिए कहा।

सावित्री ने मना कर दिया।

माँ ने पूछा—'आज भी गौरी-व्रत है बेटी ?'

'नहीं माँ—तुम्हारी गौरा पार्वती···'

सावित्री ने बड़े संयम से दाँतों तले बेतरह अपने काँपते ओठों का भींच लिया। पलंग पर जा लेटी। माँ ने थोड़ी देर बाद देखा, सब्बो को बहुत तेज़ बुखार है। क्लीनिक टेलीफोन करके तत्काल बड़ी नर्स को बुला लिया। चौबीस घंटे तक उतना ही तेज़ बुखार रहा। रानीमाँ ने सतीनाथ को टेलीफोन किया। नौकर ने बताया, साहब बनारस गये हैं।

तीसरे दिन सुबह बुखार कम हो गया। सावित्री तकिये के सहारे पलँग पर बैठी हुई खिड़की से बाहर देखने लगी—मालती पर बुलबुल का वह घोंसला न जाने कैसे उजड़ गया था।

किन्तु थोड़ी ही देर बाद उसने पाया कि एक वही बुलबुल मालती की दूसरी ओर बैठकर कुछ ही क्षणों बाद अपने पर झाड़कर अजब सुरीले स्वर में गाने लगा। थोड़ी ही देर बाद उसका जोड़ा बुलबुल युक्लिप्टस से उड़कर विन्डोपेन पर फुदक-फुदककर नाचने लगा और थोड़ी देर बाद सहसा दोनों एक साथ उत्तर दिशा में उड़ गये—आर्किड घर के ऊपर से अपराजिता को जैसे स्पर्श करते हुए।

इन कुत्तों को मारो !

अगले दिन भी मैंने देखा, उसने एक सोये हुए कुत्ते पर पत्थर के एक बड़े टुकड़े से प्रहार किया। मामूली प्रहार नहीं, अपनी पूरी शक्ति से प्रहार—खिंचे हुए चेहरे से कूकुर जाति पर पूरे वैर भाव के साथ।

पर कुत्ते की जाति, उसे इतनी जल्दी मौत कहाँ !

नींद में माता वह घायल जीव अजब ढंग से लड़खड़ाता हुआ नीचे घाटी में भाग गया, और बहुत दूर नीचे पहुँचकर तब वहाँ से वह अपनी विकट चोट की पीड़ा में बड़ी देर तक पें-पें करता रहा।

मारने वाले को उतने से तृप्ति न हुई। वह साहब आवेश में आगे बढ़कर घाटी के कगार पर खड़े हो गये और अवश उस जीव को क्रोध से देखते हुए बोले, 'ब्लडी स्वाइन ! आई विल किल यू !'

उस जीव ने जैसे तत्काल अंग्रेजी समझ ली, और उसके जवाब में उसने वहीं से द्रुत और विलम्बित दोनों स्वरों में साहब पर भूंकना शुरू किया, हों...हों•••हूँSS SS हों हं !

साहब कुत्ते की बदतमीज़ी और गुस्ताखी से और भी नाराज़ होकर अपने कॉटेज में लौट आये, और क्रोध-शांति के लिये बहुत तेज़ी से सिगार पीने लगे।

कांगड़ा वैली में वहाँ हम लोग एक ड्रामा सेमिनार के सिलसिले में एकत्र हुए थे। सामने हिमरंजित शिखरवाली पर्वतश्रेणियाँ दिखती थीं। उस हिमवान के चरणों के समीप वह गाँव था—अन्द्रेता, और

उसी से सटकर अलग ऊँचाई पर आठ दस कॉटेजों से सुसज्जित वह रम्य घाटी थी—'हेवन वेली'। वहीं हम लोग अलग-अलग कॉटेजों में थे। वह साहब हम लोगों के 'मेस' के, खाने-पीने-रहने आदि के, मैनेजर थे—नाम था विलियम। अविवाहित थे, काम चलाने के लिये हिन्दी बोल लेते थे। जन्मभूमि उनकी हैदराबाद थी, पर हिन्दुस्तान के लोगों के दृष्टिकोण से वह किसी तरह भी सहमत न थे। विलियम साहब अब तक इंगलैंड नहीं जा सके थे, पर वह अक्सर इंगलैंड के लोगों के जीवनदर्शन का उदाहरण देते हुए कह उठते थे—एक वह इंगलैंड है और एक यह हिन्दुस्तान। दोनों देशों की स्वतंत्रता, सफाई, ईमानदारी, तन्दुरुस्ती और बुद्धि में कितना फर्क है ! कहाँ जमीन और कहाँ आसमान। और मैं कह रहा हूँ, दोनों देशों में यह फर्क तब तक रहेगा, जब तक इस देश के लोग जीवन के प्रति अपना सारा दृष्टिकोण न बदल देंगे ! कमाल है, बीसवीं सदी में भी यह देश दसवीं सदी में पड़ा हुआ है।

अब तक इस देश में इतने मच्छर और मक्खियाँ हैं !

अब तक यहाँ इतने आवारा 'वैगाबान्ड' कुत्ते जीते रहते हैं ! इनकी क्या जरूरत है ?

मैं अपने कॉटेज के सामने हरी घास पर टहल रहा था। जून मास का सूरज उस समय तनिक भी अप्रीतिकर न था।

विलियम साहब चुरुट पीते-पीते मेरे पास आये, बोले—'डाक्टर साहब, हम जानता है, और साफ-साफ आपसे बोलता है कि हिन्दुस्तान की गरीबी और इतनी बीमारी के महज़ दो सबब हैं। कुत्तों और बन्दरों की वजह से इस मुल्क में इतनी गरीबी है। बीमारियों की जड़ हैं, ये मक्खियाँ और मच्छर। इंगलैंड में जनाब आपको न एक आवारा कुत्ता मिलेगा, न कहीं एक मक्खी या मच्छर। मक्खी और मच्छर तो डाक्टर साहब, हिन्दुस्तान से मँगाकर वहाँ के स्कूल-कालेज

के म्यूज़ियम में रखे गये हैं। इंगलैंड के लोग क्या जानें मच्छर और मक्खी। इंगलैंड की ही नकल में चाइना ने भी यही किया है, सुना है वहाँ भी अब मक्खी-मच्छर नहीं हैं। नयी दिल्ली में बहुत अच्छा कोशिश हो रहा है—मच्छर नहीं हैं, पर मक्खियाँ अब भी हैं। और लावारिस कुत्तों का तो इस मुल्क में हाल न पूछिये।'

मैंने विलियम साहब का ध्यान दूसरी ओर खींचना चाहा—'विलियम साहब, देखिये सामने का पहाड़ कितना ग्रैन्ड है! कितना ऊँचा और विशाल। फिर भी कभी वह बादलों में ढँककर बिल्कुल खो जाता है, और कभी सन्ध्या के समय उसकी सारी चोटियाँ और उन पर खिंचे हुए वे असंख्य नन्हें-नन्हें दर्रे, जो बर्फ से भरे हुए हैं—वह सब का सब सोना बन जाता है। मेरी इच्छा होती है विलियम साहब, कि इस अपार सोने को यहाँ से अपनी बाँहों में भर-भरकर सारे गरीब हिन्दुस्तान में बिखेर दूँ।'

विलियम ने पहाड़ की ओर देखा, पर जैसे उनकी आँखों में कुछ न लगा। सिगार का कश लेते हुए बोले—'अजी साहब! आप लोग ठहरे आर्टिस्ट, आप लोग कल्पना करता है। मगर मैं कल्पना करने लगूँ तो आप लोगों को खाना-नाश्ता न मिले। यहाँ दो ही दिनों में बीमारी फैल जाय—फूड प्वाइजन, कालरा, प्लेग और...।'

'बस बस बस—विलियम साहब!' मैंने उन्हें रोका।

विलियम साहब ने मुझे साथ लेते हुए कहा, 'अजी साहब, मैं बोलता हूँ, मैदान से भी अधिक यहाँ के लोग बोदे रहते हैं। महीनों नहीं नहायेंगे, मुँह और दाँत तो जैसे कभी साफ ही नहीं करते। कुत्तों और मक्खियों से वही गंदगी चौगुनी बढ़कर हमारी जान को खतरा बनता है। आइये, मैं आपको दिखाता हूँ, यहाँ का सारा 'एटमासफ़ियर' कितना डेंजरस है! मुझे यह पहले से पता होता तो यह सेमिनार मैं यहाँ हर्गिज़ न होने देता।'

मेरे दायें-बायें दोनों ओर एप्रीकाट, नासपाती और लीची के हरे-हरे पेड़ झूम रहे थे। मठंल और मोतिया की सुगन्धि चारों ओर फैल रही थी। बीसों तोते चोंचों में जबानें ऐंठते हुए टिटकोरी मार रहे थे और फलों से लदे हुए नासपाती और एप्रीकाट के वृक्षों में खेल रहे थे।

विलियम साहब मुझे संग लिये हुए सेन्टर कॉटेज में आये। वहीं हमारा 'मेस' था और वहीं हमारी डायनिंग टेबुल लगी थी। उस कॉटेज के चारों ओर जैसे सारी जमीन थलकमलों से अरुणिम हो रही थी। छप्पर का छाजन, और उस पर अंगूर की लतर इस तरह फैली थी, जैसे उस सारे देश में अंगूर ही अंगूर हों।

विलियम साहब ने मुझे डायनिंग टेबुल के पास ला खड़ा किया—'यह देखिये जनाबेआली।'

'हाय! हाय! यह क्या है? प्लेटों में इतनी ढेर-सी मक्खियाँ कैसे मरी हैं!'

'जनाब, आदाबर्ज़! ये ज़हरीली, दुश्मन मक्खियाँ अपने आप इन चारों प्लेटों में नहीं मरी हैं, सर! ये मारी गयी हैं। यह देखिये, इनके मारने की दवा, चीनी की शक्ल में है। मीठी भी उसी तरह है, और खुशबू देखिये!'

मैंने अपना मुँह फेर लिया। विलियम साहब बहुत जोर से हँस पड़े, और हँसी समाप्त करते हुए बोले, 'सारी, इलायची खा लीजिये!'

और विलियम ने तत्काल नौकरों को पुकारा—'पियारे, तुम साहब को इलायची दो! प्रीतमसिंह, तुम जल्दी से इन प्लेटों की मक्खियों को वहाँ गड्ढे में डाल कर वह पाउडर डालो और मिट्टी से उन्हें ढँक दो। और सुनो, दूसरी प्लेटों में वही दवा डालकर यहाँ रखो।'

मैं तत्काल वहाँ से मुड़कर दाहिनी ओर जेकेरेन्डा-पुष्पवृक्ष के नीचे चला गया। उसके आस-पास कैम्फर के पौधे लगे थे—खूब घनी

सुगंधि वहाँ फैली थी। नौकर के हाथ से इलायची लेकर मैंने कैम्फर के एक पत्ते पर उसे रख दिया।

विलियम मेरे सामने आकर खड़े हो गये। कहने लगे, 'आप लोगों को तो जन्म से ही यही सिखाया जाता है—अहिंसा परमो धर्मः। तभी...तभी...दैट इज ह्वाई...'

मैंने विलियम को रोकते हुए कहा, 'विलियम साहब, आप क्या समझते हैं कि आपके इस तरह मारने से इस मुल्क की तमाम मक्खियाँ मर जायेंगी ?'

विलियम ने बड़े गर्व से कहा, 'साहब, इसी तरह अगर पाँच फीसदी क्या, मैं कहता हूँ, एक फीसदी लोग भी इस मुल्क में ऐसा करने लगें तो जरूर सारी मक्खियाँ खत्म हो जायँ !'

मैंने विनय के स्वर में पूछा, 'विलियम साहब, आपने साइंस तो जरूर पढ़ी होगी !'

'हाँ जी, मैंने 'बायालोजी' पढ़ी है।'

मैंने फिर कहा, 'आपने मैथमेटिक भी पढ़ी होगी !'

'हाँ जी, इन्टर तक पढ़ी है !'

मैंने कहा, 'आपको तो पता ही होगा, ये मक्खियाँ कहाँ से कैसे पैदा होती हैं।

विलियम ने चुरुट का सिरा दाँत से काटते हुए कहा, 'मैं उस डिटेल में नहीं जाता ! मैं तो यही मानता हूँ कि इन मक्खियों को जिन्दा नहीं रहने देना चाहिये, इन्हें किसी भी तरह फौरन मार देना चाहिये। यही बीमारियाँ पैदा करती हैं, और यही फैलाती भी हैं।'

मैं चुपचाप सामने हरी घाटी में नीचे से ऊपर तक एक पर एक बने हुए खेतों की ओर जाने लगा। विलियम ने कहा 'एक मिनट और माफ कीजिये ! इस गाँव से मैंने जो एक नौकर रखा है...क्या नाम है तुम्हारा जी ! ओ ब्लडी काली टोपी वाला आदमी ! सुनता क्यों नहीं ?'

करीब चालीस साल का एक दुबला-पतला आदमी, गोरा चिट्टा, पर मैले-गरीब कपड़ों में सामने आया। सिर पर जैसे किसी की दी हुई ऊनी कपड़े की काली टोपी। 'मेस' के लिये गर्म मसाला पीसते हुए गीले हाथ को वह तेजी से अपनी कमीज में पोंछते हुए निहायत शील और विनय से बोला—'साहब मेरा नाम रिसालचन्द है।'

यह कहते हुए रिसालचन्द का सारा मुख शराफत के भाव से सराबोर हो गया। वह विनय और संकोच के भार से जैसे दुहरा-तिहरा होने लगा था। जैसे उतने बड़े-बड़े आदमियों के सामने उसका खड़ा रह सकना उसके लिये असम्भव हो रहा था।

विलियम ने मुझे बताया कि जब से वह रिसालचन्द गाँव से उनके 'मेस' में काम करने लगा है, तब से दोनों वक्त उसे अपने हाथ लाइफबॉय साबुन से धोने पड़ते हैं। वह इतना साफ जो दिखने लगा है, वह महज़ विलियम साहब की वजह से।

विलियम ने कड़े स्वर में डाँटा, 'रिसालचन्द ! खबरदार, सुन लो ! तुम्हारी वजह से गाँव के तमाम कुत्ते यहाँ आते हैं। यह भी रिपोर्ट मिली है कि तुम सारा बचा हुआ खाना उन्हें खिलाता है ! इस तरह यहाँ गन्दगी तुम्हारी वजह से फैल रही है।'

रिसालचन्द ने रुँआसे ढंग से कहा, 'सरकार कुत्तों को यहाँ मैं नहीं लाता !'

'फिर कौन लाता है ?'

'सरकार, मैं क्या बताऊँ, खाने की खुशबू और लालच से चले आते हैं !'

'हूँ, समझ गया। तो यह सच है कि टेबुल पर की सारी प्लेटों में डिनर-लंच के बाद ये कुत्ते मुँह डाल कर खाते हैं ?'

रिसालचन्द विलियम की बड़ी-बड़ी क्रोध में उबलती हुई आँखों को देखकर डर गया।

आँखें नीचे किये हुए हाथ जोड़कर बोला, 'सरकार अब ऐसा नहीं होगा ?'

'अगर ऐसा हुआ तो तुम्हारी नौकरी उसी टाइम खत्म !'

रिसालचन्द सिर झुकाये हुए 'मेस' में वापस चला गया।

मसाला पीस चुकने के बाद उसने करीब डेढ़ सेर प्याज छीला, और उसकी आँखें उससे बेतरह दुखने लगीं।

शाम होने को थी। रिसालचन्द ने देखा, गाँव के वही चारों कुत्ते दूर बैठे हुए एक दृष्टि से उसे लख रहे थे। रिसाल को विलियम साहब की आँखें याद आयीं, और नौकरी से झट निकाल देने की बात उसके सामने तिर गयी।

रिसाल ने गाँव के उन कुत्तों को कभी दूब से भी न मारा था। उसने आज पास में ही रखे लकड़ी के एक डंडे को उठाया और बड़े गुस्से में वह कुत्तों की ओर दौड़ा। कुत्तों पर उसके दौड़ने और मारने की धमकी का कोई असर न हुआ। उन्हें जैसे रिसाल दादा के उस अस्वाभाविक कर्म पर कुछ विश्वास ही न हुआ। वे चारों खड़ होकर दुम के साथ पूरा शरीर हिलाते हुए कूँ कूँ करके उसके पैरों को जबान से चाटने लगे! गुस्से में वह जितना ही लाठी तानता था, उन्हें धमकाते हुए जितनी ही गालियाँ देता था, वे लाड़ले कुत्ते उतना ही उछल-उछलकर रिसाल को पूरी तरह से छ लेना चाहते थे।

विलियम का खानसामा, जो उनके संग दिल्ली से ही आया था, उसने जाकर विलियम से रिसालचन्द की रिपोर्ट कर दी।

विलियम ने देखा—रिसाल हाथ में डण्डा लिये हुए कुत्तों को लाठी के सिरे से दूर ढकेल रहा है, झुँझला-झुँझला कर गालियाँ दे रहा है, पर वे सैलानी, निर्भय कुत्ते उतने ही लाड़ से रिसाल के आगे-पीछे कैंची काटते हुए बड़ी तेजी से परिक्रमा कर रहे थे।

विलियम को बड़ा गुस्सा आया। उसने आवेश में दौड़कर रिसाल

के हाथ से डंडा ले लिया और कुत्तों पर बेतरह आक्रमण किया। पर डंडे की पकड़ में एक भी कुत्ता न आया। सब उसी दम अदृश्य हो गये।

फूलती साँसों के बीच बहुत बिगड़कर विलियम ने कहा, 'मैं तेरी सारी हरकतें जानता हूँ। मुझसे कुत्ते कैसे भाग गये ? चलो, इसी वक्त नहाओ। अपना पूरा कपड़ा गर्म पानी में खौलाओ—चलो, मैं कहता हूँ।'

रिसालचन्द डर से काँपने लगा। लगता था, जैसे बेचारा अभी रो देगा।

शाम हो चुकी थी। पिछले दिनों खूब पानी बरसा था। आज बड़ी तेज ठंडी हवा बह रही थी। सामने का विशाल पर्वत भूरे-भूरे बादलों में ढँक गया था।

रिसालचन्द ने सोते पर जाकर नहाया और एक अँगोछा पहनकर अपने कपड़ों को पानी में खौलाने लगा।

पर रिसाल के कपड़े सूखेंगे कब ?

साहब लोगों के डिनर का वक्त हो रहा है, वह कैसे गाँव जाये कि वह वहाँ से कुछ ओढ़ने का प्रबंध करे।

पर विलियम साहब मेहरबान भी हैं। उन्होंने रिसालचन्द से कहा कि तुम तब तक अँगीठी के पास ही बैठो; नहीं तो तुम्हें निमोनियाँ हो जायेगा। यहाँ आस-पास में कहीं डाक्टर ढूँढ़ने से भी न मिलेंगे।

विलियम ने रिसाल को अपनी एक पुरानी कमीज दे दी—और उसके कपड़े नासपाती और खूबानी की डालों पर सूखने लगे।

रात को हम लोग वहाँ डिनर के लिये बैठे। मैंने दूर पर देखा, वे चारों कुत्ते पिछली टाँगों पर तैनात बैठे हुए मेस और टेबुल की ओर एकटक देख रहे थे। दूसरी ओर निगाह दौड़ायी तो देखा, वही दिन का विलियम के पत्थर से घायल कुत्ता पिछली टाँग और कमर से

लँगड़ाता हुआ धीरे-धीरे आ रहा है, और अंगूर की लतर के बीच छिपकर खड़ा हो गया है। उसकी आँख से जब मेस की रोशनी टकराती है, तो लगता है, जैसे सामने पर्वत की किसी चोटी पर किसी ने काँपते हुए दिये जला दिये हों।

डिनर समाप्त करके जैसे ही हम लोग हाथ मुँह साफ करने लगे, उसी क्षण हमने देखा, चारों कुत्ते प्लेट की हड्डियों और जूठन के लिए बेकरार होकर आस-पास दौड़ने लगे। घायल कुत्ता अपने दाँव में अब तक वहीं छिपा खड़ा था। रिसाल अँगीठी के पास से ही उन्हें वहाँ से भाग जाने के लिये इशारा कर रहा था।

विलियम ने उन्हें गुस्से से देखकर अपने मन में प्रतिहिंसा को चबाते हुए कहा—'ये ब्लडी स्वाइन ऐसे नहीं मानेंगे !'

मैंने कहा, विलियम साहब, क्यों इतने परेशान हैं ? छोड़िये भी !'

'आई मस्ट किल देम !'

'विलियम साहब, जीवों पर दया करना तो बाइबिल में भी है !—हैव पिटी !'

आवेश में विलियम ने मेरी बातों पर ध्यान न दिया। खानसामे को अलग बुलाकर उसने कहा, 'देखो, कल दोपहर को चुपके से अलग थोड़े से खाने में ज़हर मिलाकर इन्हें दे दो, सारी मुसीबत खत्म !'

रिसालचन्द सीधा है, गँवार है, पर उसने उसी क्षण सब आभास पा लिया। कुत्तों को ज़हर ! रिसालचन्द पैर से सिर तक काँप गया।

वह अँगीठी के पास से उठा। सारी जूठन प्लेटों से उठा कर उसने मिट्टी के गड्ढे में डाल कर उसे मिट्टी से ढँक दिया। पर उसने अनुमान किया कि ये कुत्ते उस गड्ढे को खोदकर हड्डी के टुकड़ों को फिर भी निकाल लेंगे और सुबह इधर-उधर बिखरी हुई हड्डियों को देखकर साहब और भी नाराज़ होंगे, फिर और न जाने क्या करेंगे।

रिसालचन्द ने अपने हिस्से का सारा खाना अँगोछे में बाँध कर

कुत्तों को उसी की लालच में खींचता हुआ उस घनी रात में वहाँ से गाँव में आया। अपने घर में आकर उसने अँगोछे को खोला और आधा खाना बराबर हिस्सों में बाँटकर उसने चारों कुत्तों को खिला दिया। और कुत्तों से बोला, 'यह आधा बचा हुआ खाना तुम लोगों को कल सुबह खिलाऊँगा—कहीं जाना नहीं !'

कुत्ते संतुष्ट होकर रिसाल के दरवाज़े पर सो गये—फिर वह घायल कुत्ता लँगड़ाता हुआ दरवाज़े पर आ खड़ा हुआ। रिसाल ने उसे अपनी गोदी में उठाकर देखा, उसकी पिछली टाँग बिल्कुल टूट चुकी है—कमर पर घाव ताजा है। उसने अँगोछे में बँधे शेष सारे भोजन को उसे खिला दिया।

सुबह हुई। पूरी धवलधारा काले-घने बादलों में समा गयी थी।

रिसालचन्द अपने दरवाजे के चबूतरे पर बैठा हुआ, पहाड़ पर देखने लगा—दिन कब का निकल आया है। वह सोचने लगा, साहब लोगों को चाय पीने में देरी हो रही है। उन्हें चाय कौन पिलायेगा। और भी तो दो नौकर हैं, वे पिला देंगे ! नहीं तो खानसामा ही पिला देगा।

अब तो बहुत दिन चढ़ आया। लोग अपने-अपने खेतों में धान की निकाई करने जा रहे हैं। औरतें स्प्रिंग पर कपड़े फींचने जा रही हैं।

रिसालचन्द चारों कुत्तों को बहुत मुस्तैदी से पकड़े हुए बैठा है।

कुत्ते उसके पैर पर मुँह रखे सो रहे हैं। पाँचवाँ घायल कुत्ता अपने पैर के घाव को चाट रहा है। पर उसकी जीभ कमर के घाव तक नहीं पहुँच पा रही है।

रिसालचन्द उस गरीब की बेबसी को देख रहा है। और उसके घाव पर ममता स्नेह से हाथ फेरता हुआ कह रहा है—'घबड़ा नहीं रे, नगरौता के अस्पताल से तेरे लिये दवा लाऊँगा !'

गुमशुदा की तलाश

जगदीश नाम माँ का दिया हुआ था।

अब तो वह है—रनधीर सोनापाली ! मई में पंद्रह दिन मसूरी, फिर चकराता रहकर अब वह गीता चक्रवर्ती के साथ विहार करता हुआ पिछले दिनों हरिद्वार आया था।

गऊघाट पर हरि की पैड़ी में टेहरी हाउस के प्रसिद्ध रॉयल होटल में गत दिन की पिछली रात को गीता ने रनधीर से बड़ी तीखी लड़ाई की थी। वह अपने वसंत भरे जीवन का उससे हिसाब माँग रही थी। वह ऐसे तेज धार प्रश्न कर रही थी, जिनसे आहत होकर रनधीर चुप देखता रह जाता था। वह आँसुओं के युद्ध में क्षत-विक्षत होकर उससे प्रश्न करती थी—मेरा जीवन क्या है ? इस आवारागर्दी का उद्देश्य क्या है ? यह कैसा बादल है हमारे जीवन में, जो सिर्फ घेरे डालता है ? यह कैसा मोह, जो हमें सिर्फ भटकाता है, जीवन और जवानी के सिर्फ रोमांटिक किस्से कहता है; पर आज चार वर्ष बीत गये, इसने हमें कोई रास्ता न दिया। न हम जी सके, न हम बदनाम ही हुए। यह क्या है ? तुम हमेशा कहते रहे कि हम शादी करेंगे। तुम कहते हो, मैं बहुत अच्छी 'बिजनेस' करता हूँ; मेरे पास रुपयों की कमी नहीं है। पर तुम लोगों से इतना अलग क्यों रहते हो। तुम में इतना भय क्यों समाया रहता है ?

.....मुझे अब पता लग गया। अब तुम मुझसे शादी नहीं

करोगे। अब क्या है मुझमें जो तुम्हें विवाह करने के बाद मिलेगा ? छीः छीः छीः मुझ पर धिक्कार है ! मैंने तुम्हारे सहारे न जाने कितने स्वप्न देखे थे। लेकिन···लेकिन कल सुबह मैं निश्चय ही यह असंगतकारी जीवन छोड़कर अकेली अपने रास्ते चली जाऊँगी।

और रनधीर के सामने वह अगली सुबह आ खड़ी हुई।

तुमसे मैं आज एक प्रार्थना करता हूँ, गीता !—रनधीर ने विनम्र स्वर में कहा—तुम्हें तो पूजा-अर्चना, ईश्वर और गंगा में विश्वास है। तुम्हीं मुझे पहली बार हरिद्वार ले आयीं। जाने के पहले तुम अपनी गंगा में तो नहा लो। आज संध्या हरि की पैड़ी के गंगा मंदिर पर दीपदान-पूजन तो कर लो, गीता !

गीता ने आज पहली बार अनुभव किया, पहली बार उसके मुँह से, उसके मन की यह भाषा सुनी कि रनधीर किसी के विश्वास का इतना आदर भी करता है। उसके पास विश्वास न सही, पर वह विश्वास करना तो चाहता है।

प्रातःकाल गीता हरि की पैड़ी पर गंगा स्नान करने गयी। और रनधीर बाहर फर्श पर टहलता रहा। गीता गंगा की धार में पुष्प-अक्षत डालती रही, रनधीर बाहर सीढ़ियों पर खड़ा देखता रहा।

और, उसके पहले की एक शाम ! गीता अकेली हरि की पैड़ी के गंगा मंदिर पर दीपदान-पूजा कर रही थी और वह स्वयं बाजार के तिराहे पर नकली मूँछ-दाढ़ी लगाये, कमर से एक खुला छोटा-सा बक्स लटकाये, उसमें से सामान निकाल निकाल कर मूँछ-दाढ़ी बना-बना कर बेच रहा था।

आसपास से गुजरती हुई भीड़ को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह अजीब स्वर में बोलता—हैव प्रिक···प्रिक···प्रिक ! हैव फाइन प्रिक···प्रिक···प्रिक !"

वह अपनी अजीब जर्मन भाषा की उच्चारण विधि में शायद यह

कहता रहा कि मूंछ-दाढ़ी, खबसूरत, लाजवाब मूंछ-दाढ़ी बनवाओ। मूँछ-दाढ़ी खरीदो।

एक आठ साल का लड़का अपनी माँ को साग्रह उसके पास ले आया। माँ की अवस्था चालीस वर्ष के आसपास थी, पर चेहरे से बहुत दुखी, जैसे उसकी आँखें हरदम कुछ ढूँढ़ रही थीं। माँ ने कमर से बटुआ निकालकर बच्चे के हाथ में पकड़ाया और अपनी चमकदार गोल गोल फूलों वाली झिलमिल मारवाड़ी चादर को ठीक करती हुई वह बच्चे के लिए मूंछ चुनने लगी।

आठ आने की मूँछ।

बच्चे ने झट बटुए में से पाँच रुपये का नोट निकाल कर बक्स पर रख दिया।

साढ़े चार रुपये वापस।

—हैव प्रिक···प्रिक···प्रिक! फाइन प्रिक···प्रिक···प्रिक···!

बच्चा अपनी मूँछ में मस्त और रनधीर सोनापाली के हाथ में बड़ी सफाई से वह बटुआ नाचकर उसके बक्स में चला आया।

—हैव प्रिक···प्रिक···प्रिक···!

जै गंगा मइया!

रनधीर ने झट नौ-दो ग्यारह होकर बक्स और अपनी मूँछ-दाढ़ी को गंगा में प्रवाहित कर दिया।

गंगा मंदिर पर पूजा समाप्त हो रही थी। असंख्य घंटे-घड़ियालों और शंखों का संगीत गंगा में तिर रहा था और उतने ही असंख्य दीप पुष्प भरे पात की नाव पर जगमगाते हुए गंगा में तेजी से बह चले थे।

रनधीर अपने होटल के कमरे में आया। बटुए को खोला—सोने की चार चूड़ियाँ, डेढ़ सौ रुपये और बारह-तेरह आने की रोजगारी और एक छोटा-सा फोटो—उन्नीस-बीस वर्ष की अवस्था के किसी नवयुवक का चित्र। वह हलके से हंस पड़ा—हैव प्रिक···प्रिक···प्रिक!

चूड़ियाँ झट बक्स में। रुपये पर्स में। और पर्स नयी पैंट की भीतरी जेब में पहुँच गया।

जै गंगा माँ!

खाली बटुआ गंगा की तेज लहरों में चमककर बह गया। और वह फोटो? अँगुलियों के बीच भिचकर वह फोटो चिथने ही जा रहा था कि रनधीर अनायास ही रुक गया। फोटो उसने पाकेट में रख लिया।

यह कथा कल की थी।

दूसरे दिन करीब तीन बजे अपरान्ह में रनधीर कमरे में से उठकर बारजे पर सहसा हाथ टेककर खड़ा हो गया—हाहाकार करके बहती हुई गौमुखी गंगा, मानो बिलकुल अभी-अभी, ताजी-ताजी सामने हिमालय के अंक से निकली है। ब्रह्मकुंड से गऊघाट पुल तक—समूची हरि की पैड़ी यात्रियों से भरी हुई। उस पार साधुओं का जमघट। उसके परे वह आइरिश पुल और वह अंकभाज् की तरह हिमगिरि, जिसकी हरी घाटियों से वर्षा के नये-नये बादल शिशुओं की तरह खेलते हुए चोटियों पर चढ़ रहे हैं।

होटल के नीचे पुल के किनारे लखनऊ के आम ढेरियों में बिक रहे हैं—सफेदा, दशहरी।

रनधीर आम खरीदने की इच्छा से नीचे उतर आया। आम खरीदने वालों की भीड़ बहुत लगी हुई थी। वह दूर खड़ा रहा, फिर पुल की दीवार पर चिपके हुए रंग-बिरंगे इश्तहार देखने लगा। हरिद्वार में दंगल। बदरीधाम में विष्णुयज्ञ। दसवाँ शानदार सप्ताह—छोटी बहन। ऋषीकेश में स्वामी शुद्धानन्द का भाषण। लछमन झूला क्षेत्र में नया औषधालय। और यह किनारे का अजीब इश्तहार—

सौ रुपये इनाम!

गुमशुदा की तलाश!!

नीचे फोटो गुमशुदा का और यह बयान·····परमेसरीदास अग्रवाल,

४

उम्र चौबीस साल। रंग गोरा, कद लंबा। चेहरा सुन्दर पर जैसे हरदम घबड़ाया हुआ। सिर के बाल घुँघराले, काले। घर से नीली पापलीन की कमीज और ट्रापिकल की कत्थई रंग की पेंट पहने हुए है। दोनों कपड़ों पर नाम पड़ा हुआ है। नंगे पैर और नंगे सिर है। उठा हुआ ललाट। दोनों भौंहों के बीच एक छोटा-सा तिल है। कुछ दिमागी खराबी के कारण १३ जनवरी १९६१ से लापता है। जो भाई, बहन, मेहरबान कृपालु, उसे मेरे पास पहुँचावेंगे, कहीं से भी उसका सही पता देंगे, उन्हें सधन्यवाद सौ रुपये अलावा खर्चे के दिये जायेंगे।

नोट—उसका यह ऊपर का फोटो पाँच वर्ष पुराना है। अब दिमाग की खराबी, व उम्र की वजह से कुछ जरूर ही फर्क पड़ गया है—और पड़ गया होगा।

निवेदक—भुवनेश्वरीदास अग्रवाल
शिवाजी क्लाथ मारकेट
मुजफ्फरनगर

रनधीर की दृष्टि इश्तहार के फोटो पर जम गयी। यह तो बिलकुल वैसा है, जैसा कि उसे कल बटुए में मिला था। पाकेट से फोटो निकालकर उसने कई बार देखा—वही फोटो! बिलकुल गुमशुदा परमेसरीदास का चित्र!

रनधीर सहसा डर गया और वहाँ से हट आया। पर वह इश्तहार अपने गुमशुदा मालिक के चित्र के साथ उसकी आँखों के सामने खिचा रहा।

और उस कल वाली माँ का उदास, घबड़ाया हुआ तथा खोया-खोया मुख भी उसके सामने कौंध आया। माँ का वह मुख जैसे उससे कहने लगा कि, हे मूँछ-दाढ़ी बेचने वाले, तुमने मुझसे इनाम का पँचगुना धन ले लिया, कोई बात नहीं, तुम मेरे उस बच्चे को ढूँढ़ दो। मैं तुमसे आँचल पसार कर भीख माँग रही हूँ। सुनो···सुनो···मैं तुमसे भीख माँग रही हूँ। सुनो···!

रनधीर वहाँ से भागकर गंगा के पुल पर टहलने लगा। वहाँ से हटकर वह हरि की पैड़ी पर जा खड़ा हुआ। फिर जैसे अपने से पीछा छुड़ाता हुआ वह होटल के बारजे पर पहुँचा।

गीता नींद में मस्त पलंग पर सो रही थी। अकेले रनधीर को धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा कि वह इश्तहार जैसे उसी की तलाश के लिए हो। जैसे गुमशुदा रनधीर की तलाश के लिए उसकी बीमार माँ ने यह इश्तहार दिया हो—

जगदीश चोपड़ा, उम्र बीस साल, रंग गोरा, कद लंबा। नाक लंबी, आँखें बड़ी बड़ी, सिर के बाल सीधे मुलायम, रंग कुछ कत्थई। बी. ए. दूसरे साल में पढ़ने वाला। काली ऊनी पेंट पर एक्टरकट फूलवाली बुशशर्ट पहने, हाथ में घड़ी बाँधे। दिल दिमाग का पूरा सही, एकाएक २४ फरवरी १९५७ को कानपुर के कालेज की क्लास से गायब हो गया है। तरह-तरह की बोलियाँ बोलना जानता है। बहुत उम्दा फिल्मी गीत गाता है, मिनटों में बड़े से बड़े लोगों को प्रभावित करता है। बड़ा प्यारा, बड़ा सुंदर। जो भाई बहन, मेहरबान उसे मेरे पास पहुँचायेंगे, या उसका कहीं सही-सही पता देंगे, उन्हें एक हजार रुपये इनाम अलावा खर्च के दिये जायेंगे।

निवेदिका—सरोजनी देवी
मारफत किशनचंद चोपड़ा,
चौक, कानपुर।

रनधीर अपने-आपको ढूँढ़ने लगा। अपने जगदीश चोपड़ा को ··

······*जो उस दिन, यानी चार साल पहले, अपने पिता से बुरी* तरह लड़कर अपनी बी. ए. कक्षा में अंग्रेजी के अध्यापक को गाली देकर कानपुर से भाग निकला। और सीधे बंबई। बेटिकट! गाड़ी से उतरता-चढ़ता वह पाँचवें दिन बोरीबंदर पहुँचा।

बंबई में अपनी घड़ी बेचकर अगले दो-तीन दिनों तक खाता-पीता

इधर-उधर घूमता रहा। फिल्म स्टुडियो के चक्कर लगाता रहा। एक दिन एक एक्सट्रा एजेन्ट का पटाकर फिल्म शूटिंग की एक भीड़ में वह घुस गया। पर पैसा उसे एक भी न मिला। ऊपर से उसे एजेंट की बंबइया गाली अवश्य मिली।

एक दिन उसकी भेंट एक पाकिटमार से हुई। पाकिटमार ने उसे अपने गिरोह के 'दादा' से मिलवाया।

दादा ने लाल-लाल आँखें उठाते हुए पूछा—क्यों बे, इंपोर्ट-इक्सपोर्ट में काम करेगा ?

—जरा सोच लूँ मैं !

—साले का कान पकड़कर यहाँ से बाहर निकाल दे ! बड़ा सोचने जाइँगा ! भाँग जा ! माँय का दूध पीं पहिले !

जो पाकिटमार वहाँ जगदीश को ले आया था, वही उसका कान पकड़कर उसे बाहर घसीटने लगा।

जगदीश का खून खौल उठा। उसने पाकिटमार के मुँह पर एक झापड़ मारकर 'दादा' के सामने तन कर कहा—सोच लिया उस्ताद ! मैं इंपोर्ट-इक्सपोर्ट का काम करूँगा !

—शाबास बेइंट्टा ! पहिलें डबल चाँय लाओं इसके लिए ! लगता हें भूखा हें यहँ ! क्यों ? खाइंगा न ?

—कहाँ का हैंइ ?

—यू. पी., कानपुर का !

—पण अब बंबैइया बनैइंगा ! है न ?

—हाँ !

—नाम क्याँ ?

—नाम ?·····नाम तो जगदीश था, लेकिन रनधीर ही रहेगा।

—शाबाश ! चलैंइंगा·····सब चलैंइंगा ! सिर्फ एक हफ्ते की ट्रेनिंग, अउर तुम्हारा चायँ, खानाँ मेरी इसी खोली में—ठीक ?

और जगदीश हो गया रनधीर और रनधीर हो गया बंबई में पाकिटमार। क्या मजे ! फिर तो रंग आ गया !

क्या बात है ! उधर पलक, इधर सफाई का हाथ है !

पर तीसरे ही महीने में वह उतनी ही सफाई से पुलिस द्वारा गिरफ्तार भी कर लिया गया। हथकड़ी डालकर उसे इंसपेक्टर के पास लाया गया और इंसपेक्टर ने जैसे ही उससे पहला सवाल किया—कि कहाँ का रहने वाला है तू ? तो जगदीश जरा भी न डरा, पर उसकी आँखें भर आयीं। और इंसपेक्टर के दूसरे सवाल पर—तेरे पिता का नाम ?—जगदीश फफककर रो पड़ा। इन्सपेक्टर ने मुस्कराकर कहा था—साला अभी नया-नया ही भरती हुआ लगता है !

—हाँ, इंसपेक्टर साहब, मैं बिलकुल नया-नया हूँ। मुझे यदि माफ कर देंगे तो मैं आज ही इसी वक्त इस बंबई को छोड़कर अपने शहर चला जाऊँगा।

—सच, चले जाओगे ?

—हाँ, सच चला जाऊँगा। मुझपर एतबार कीजिए इंसपेक्टर साहब !

—जाओ, एतबार किया तुम पर !

बंबई के उस इन्सपेक्टर के एतबार को अपने सिर-आँखों पर लिये हुए जगदीश उसी दिन गाड़ी पर बैठ गया।

वह गाड़ी दिल्ली जायेगी। दिल्ली से फिर कानपुर। और कानपुर यानी अपने घर। पर कपड़े की गद्दी पर बैठे हुए पिताजी माँ को गाली देते हुए मुझे व्यंगबाण से बेध देंगे—आ गया हरामजादा !

—नहीं पिताजी, मुझे माफ कीजिए। मुझसे गलती हुई। ठोकर खाकर अब मुझे नसीहत मिल गयी। अब मैं कुछ काम करूँगा पिताजी ! मुझे काम बताइए !

—काम ! जा उस परचून की दुकान पर बैठ ! और रोजाना अपनी रोकड़ बही पर मेरे दस्तखत करा !

इधर-उधर घूमता रहा। फिल्म स्टुडियो के चक्कर लगाता रहा। एक दिन एक एक्सट्रा एजेन्ट का पटाकर फिल्म शूटिंग की एक भीड़ में वह घुस गया। पर पैसा उसे एक भी न मिला। ऊपर से उसे एजेंट की बंबइया गाली अवश्य मिली।

एक दिन उसकी भेंट एक पाकिटमार से हुई। पाकिटमार ने उसे अपने गिरोह के 'दादा' से मिलवाया।

दादा ने लाल-लाल आँखें उठाते हुए पूछा—क्यों बे, इंपोर्ट-इक्सपोर्ट में काम करेगा ?

—जरा सोच लूँ मैं !

—साले का कान पकड़कर यहाँ से बाहर निकाल दे ! बड़ा सोचने जाइँगा ! भाँग जा ! माँय का दूध पीं पहिले !

जो पाकिटमार वहाँ जगदीश को ले आया था, वही उसका कान पकड़कर उसे बाहर घसीटने लगा।

जगदीश का खून खौल उठा। उसने पाकिटमार के मुँह पर एक झापड़ मारकर 'दादा' के सामने तन कर कहा—सोच लिया उस्ताद ! मैं इंपोर्ट-इक्सपोर्ट का काम करूँगा !

—शाबास बेइंट्टा ! पहिलें डबल चाँय लाओं इसके लिए ! लगता हें भूखा हें यहँ ! क्यों ? खाइंगा न ?

—कहाँ का हैंइ ?

—यू. पी., कानपुर का !

—पण अब बंबैइया बनैइंगा ! है न ?

—हाँ !

—नाम क्याँ ?

—नाम ?·····नाम तो जगदीश था, लेकिन रनधीर ही रहेगा।

—शाबाश ! चलैइंगा·····सब चलैंइगा ! सिर्फ एक हफ्ते की ट्रेनिंग, अउर तुम्हारा चायँ, खानाँ मेरी इसी खोली में—ठीक ?

और जगदीश हो गया रनधीर और रनधीर हो गया बंबई में पाकिटमार। क्या मजे ! फिर तो रंग आ गया !

क्या बात है ! उधर पलक, इधर सफाई का हाथ है !

पर तीसरे ही महीने में वह उतनी ही सफाई से पुलिस द्वारा गिरफ्तार भी कर लिया गया। हथकड़ी डालकर उसे इंसपेक्टर के पास लाया गया और इंसपेक्टर ने जैसे ही उससे पहला सवाल किया—कि कहाँ का रहने वाला है तू ? तो जगदीश जरा भी न डरा, पर उसकी आँखें भर आयीं। और इंसपेक्टर के दूसरे सवाल पर—तेरे पिता का नाम ?—जगदीश फफककर रो पड़ा। इन्सपेक्टर ने मुस्कराकर कहा था—साला अभी नया-नया ही भरती हुआ लगता है !

—हाँ, इंसपेक्टर साहब, मैं बिलकुल नया-नया हूँ। मुझे यदि माफ कर देंगे तो मैं आज ही इसी वक्त इस बंबई को छोड़कर अपने शहर चला जाऊँगा।

—सच, चले जाओगे ?

—हाँ, सच चला जाऊँगा। मुझपर एतबार कीजिए इंसपेक्टर साहब !

—जाओ, एतबार किया तुम पर !

बंबई के उस इन्सपेक्टर के एतबार को अपने सिर-आँखों पर लिये हुए जगदीश उसी दिन गाड़ी पर बैठ गया।

वह गाड़ी दिल्ली जायेगी। दिल्ली से फिर कानपुर। और कानपुर यानी अपने घर। पर कपड़े की गद्दी पर बैठे हुए पिताजी माँ को गाली देते हुए मुझे व्यंगबाण से बेध देंगे—आ गया हरामजादा !

—नहीं पिताजी, मुझे माफ कीजिए। मुझसे गलती हुई। ठोकर खाकर अब मुझे नसीहत मिल गयी। अब मैं कुछ काम करूँगा पिताजी ! मुझे काम बताइए !

—काम ! जा उस परचून की दुकान पर बैठ ! और रोजाना अपनी रोकड़ बही पर मेरे दस्तखत करा !

तो वह फिर कानपुर नहीं जायेगा। वह दिल्ली ही रुक जायेगा।

कनॉट प्लेस की एक जनरल मर्चेण्ट शाप पर उसे सेल्समैनी मिल गयी—पार्ट टाइम काम। संध्या पाँच बजे से आठ बजे तक।

एक दिन उसे रेडियो के ड्रामा में अभिनय के लिए 'बुकिंग' मिल गयी। तेज तो वह था ही, मेहनत और मन के संकल्प से वह रेडियो अभिनय में प्रसिद्ध हो गया।

आकर्षक व्यक्तित्व, ऊपर से इतनी कला और कर्मठता, उन्हीं दिनों गीता चक्रवर्ती से उसका स्नेह-संपर्क हो गया।

गीता चक्रवर्ती बी. ए. आनर्स, लाइट म्यूजिक की प्रसिद्ध गायिका थी। अच्छे घर की और बहुत ही अच्छे मन और सुंदर तन की वह गीता जगदीश पर जैसे अनायास ही समर्पित हो गयी।

पर गीता जगदीश को रनधीर सोनापाली के नाम से पा सकी थी, क्योंकि रेडियो में उसका यही नाम था, बल्कि दिल्ली में उसका यही नाम था। बंबई के रनधीर ने दिल्ली में अपने नाम के आगे यूँ ही 'सोनापाली' और जोड़ लिया था। गीता ने रनधीर से कभी यह न पूछा कि यह 'सोनापाली' क्या है? अर्थात् रनधीर क्या है? किस विशेष जाति का है? वह ब्राह्मण है, या वैश्य है, या···। उसने केवल रनधीर से इतना जाना था कि वह अमृतसर का रहने वाला है, घर से नहीं पटी, इसलिए सबको छोड़कर वह दिल्ली चला आया है।

रनधीर चरित्रवान है। कर्मठ है। त्रिद्रोही है। और सुंदर भी है, कलाकार भी और गीता उसे प्राप्त भी कर चुकी है।

गीता के केवल पिता थे, एक छोटी बहन संध्या, और दो छोटे-छोटे भाई—रीनू-मीनू, और एक विधवा बुआ। पिताजी रिटायर्ड एकाउंट आफिसर थे। उन्हें पहले गीता और उस रनधार सोनापाली का वह मेलजोल बिलकुल नापसंद आया। बहुत ही अधिक लाल-पीले हुए वह। किंतु गीता और रनधीर के उत्तर के सामने उन्हें कुछ ठंडा होना ही पड़ा।

गीता और रनधीर ने विवाह की बात तै कर ली! पर गीता के पिता ने भरे कंठ से कहा—जब तक रनधीर तुम कहीं कायदे से उचित नौकरी नहीं कर लोगे, मैं तुमसे अपनी बेटी का ब्याह नहीं कर सकता। आगे तुम लोग जानो।

कायदे की उचित नौकरी के माने रुपया न!

लो रुपया! मैं दिखाता हूँ रुपये कमाकर।

और रनधीर सोनापाली फिर अपने रास्ते पर विचलित हुआ। मिर्जापुर की एक पार्टी के साथ मिलकर वह दिल्ली, अमृतसर और जालंधर तक चोरी से अफीम बेचने का काम करने लगा।

फिर क्या था, उसे मालामाल होते देर न लगी। विनयनगर में डेढ़ सौ रुपये महीने किराये के एक फ्लैट में वह रहने लगा।

गीता चक्रवर्ती और उसके पिता को विश्वास हो गया कि रनधीर ने कुछ विदेशी दवाइयों की एजेंसी ले ली है। रनधीर ने यही बताया था।

गीता रनधीर के साथ निःसंकोच रूप से रहने लगी। उसके साथ वह अमृतसर, जालंधर और उधर वाराणसी, मिर्जापुर तक यात्रा भी करने लगी। गीता को होटल में छोड़कर वह बड़ी सफलता से अफीम की लेन-देन का काम पूरा कर लेता। और बड़े विश्वास तथा ठाठ से टैक्सी पर घूमता, ट्रेन के फर्स्ट क्लास में यात्रा करता हुआ दिल्ली में चैन से रहने लगा।

एक बार ऐसा हुआ कि मिर्जापुर से दिल्ली की ट्रेन पर इलाहाबाद से आगे एक्साइज वालों की खुफिया गैंग ने उस पर आँख गड़ा ली। रात का समय था, फरवरी का महीना। गीता चक्रवर्ती अपनी 'रिजर्व बर्थ' पर सो गयी थी। उसकी 'ट्वायलेट' अटैची उसके सिरहाने थी।

और उस समय रनधीर के बैग में करीब आधे सेर वजन की अफीम थी। रनधीर ने सारी अफीम चुपके से गीता चक्रवर्ती की अटैची में रख दी।

फतहपुर स्टेशन पर एक्साइज गैंग ने उसके सन्नाटे भरे कंपार्टमेंट में छापा मारा। उसकी तलाशी हुई पर वह बालबाल बच गया।

गीता जग गयी थी। फिर उसकी अटैची देखी गयी और वह सारी अफीम बरामद !

गीता हतप्रभ !

वह हिरासत में ले ली गयी।

—यह तुम्हारी कौन है ? गैंग इन्सपेक्टर ने पूछा।

—कज़िन।

गीता को काटो तो खून नहीं।

—यह अफीम कहाँ से खरीदी ?

गीता चक्रवर्ती रोने लगी।

रनधीर ने कहा—हमें क्या पता ? इलाहाबाद पर एक पैसेंजर इस कंपार्टमेंट में आया था, और वह फतेहपुर स्टेशन पर उतर गया है। यह उसी की करामात है। यह अफीम उसी की रखी होगी।

—चलो, कोर्ट में जवाब देना !

और उस मुक्ति में गीता के हाथ के दोनों कंगन उतर गये। उसके बाद से गीता ने रनधीर के साथ ट्रेन की यात्रा बंद कर दी।

और इस साल रनधीर सोनापाली गीता चक्रवर्ती के साथ गर्मी बिताने पहाड़ आया है। मसूरी, चकराता—और रुपये जब खत्म होने लगे तो हरिद्वार के उस होटल में।

वहाँ आगे की कमाई के लिए रनधीर द्वारा वह नकली मूँछ-दाढ़ी का काम—हैब प्रिक···प्रिक···प्रिक···। हैब फाइन प्रिक···प्रिक···प्रिक !

और उस गुमशुदा की तलाश···! परमेसरीदास अग्रवाल···उम्र चौबीस···

नहीं नहीं, मेरे गुमशुदा की तलाश—जगदीश चोपड़ा, उम्र बीस

साल, रंग गोरा, कद लंबा···। माँ के हस्ताक्षर—सरोजनी देवी, मारफत किशनचंद चोपड़ा, चौक, कानपुर।

रनधीर सोनापाली की दोनों मुट्ठियाँ हवा में भिंच गयीं, जैसे उसने आज अपने गुमशुदा जगदीश चोपड़ा को पकड़ लिया—एक हजार रुपये इनाम—जो भाई बहन, मेहरबान मेरे जगदीश चोपड़ा को मेरे पास पहुँचावेंगे या उसका कहीं सही-सही पता देंगे, तो उन्हें एक हजार रुपये इनाम अलावा खर्चे के दिये जायेंगे—हस्ताक्षर सरोजनी देवी।

रनधीर ने अपने काँपते हाथों से गीता के पाँव गुदगुदा कर उसे जगा दिया।

—जाओ गीता, गंगा पूजन का समय हो गया।

गीता उठी और होटल की सीढ़ियों से उतरकर हरि की पैड़ी की ओर चली गयी।

रनधीर ने अपने रूमाल में सोने की वे चार चूड़ियाँ, डेढ़ सौ रुपये और रेजगारी बाँधकर अपनी पाकेट में सहेज लिया।

और, आज फिर वह उसी बाजार के तिराहे पर वही नकली मूँछ-दाढ़ी लगाये, कमर से एक खुला छोटा-सा बक्स लटकाये, उसमें से उसी प्रकार मूँछ-दाढ़ी बना-बना कर बेचने लगा।

—हैब प्रिक···प्रिक···प्रिक ! हैब फाइन प्रिक···प्रिक···प्रिक !

बच्चे-जवान उसे घेर-घेरकर दाढ़ी-मूँछ खरीदने लगे। पर रनधीर की दृष्टि उस आती-जाती भीड़ में उसी दुखी चेहरे वाली माँ को ढूँढ़ती रही—वह बच्चा, वह माँ !

संध्या गुजर गयी।

दो घंटे रात भी बीत गयी। पर रनधीर की आँखों में न वह माँ दीखी, न वह बच्चा ही।

बक्स की सब मूँछ-दाढ़ी बिक गयीं; किंतु रनधीर वही बोल और तेजी से बोलता हुआ अविचल ढूँढ़ती निगाहों से खड़ा रहा—खड़ा रहा।

लोग उसे चिढ़ाने भी लगे कि बिना सामान के सिर्फ पागल बोलने वाला ! पर वह बोलता रहा। बोलता रहा।

सहसा उसे वही माँ दीख पड़ी, दूर जाती हुई, बच्चों का हाथ पकड़े हुए !

रनधीर बढ़कर उस माँ के सामने खड़ा हो गया।

—माँ तुम्हारा यह सामान !

—मेरा ?

रनधीर ने अपनी मूँछ-दाढ़ी निकालकर दूर फेंक दी ;

—हाँ, माँ ! उस दिन इस बच्चे ने मूँछ खरीदी थी और आपका बटुआ भूल से मेरे पास छुट गया था !

माँ ने बँधा रूमाल ले लिया। खोलकर अपना धन पहचाना।

—पर उस बटुए में एक तसवीर थी !

—यही न ! रनधीर ने पाकेट से वह तसवीर देते हुए कहा। माँ ने काँपते हाथों से रनधीर का हाथ पकड़कर रोते हुए कहा—मेरा यह पुत्र न जाने कहाँ गुम हो गया है। यह धन तुम अपने पास बतौर इनाम के रखो और उसे कहीं से ढूँढ़कर मुझे दे दो !

—माँ, यह धन आपका है, अब अपना मन मेरा है। मैं कोशिश करूँगा !

यह कहकर रनधीर तीर की तरह उस भीड़ को चीरता हुआ हरि की पैड़ी पर चला आया। गंगा मंदिर का पूजन समाप्त हो गया था, किन्तु उसका सारा संगीत सौ-सौ नाद से गंगा की लहरों में जैसे अब भी तिर रहा था। और रनधीर ने देखा उतने ही असंख्य दीप पुष्प भरे पात की नाव पर जैसे अब भी जगमगाते हुए गंगा की धार में बह रहे थे।

रनधीर उसी तरह कपड़े पहने ही गंगा में कूद पड़ा !

उसी क्षण गीता की पुकार उसके कानों में टकरायी। वह धार में

बहता हुआ गंगापुल से नीचे लटकती हुई जंजीर को पकड़कर रुक गया। और बड़ी देर तक उसी तेज धार में जंजीर पकड़े नहाता रहा। बाहर आया तो वह बेतरह काँप रहा था।

गीता ने आश्चर्य से पूछा—यह क्या हुआ रनधीर ?

बताता हूँ गीता ! सुनो, मेरा नाम जगदीश चोपड़ा है। मैं जगदीश चोपड़ा हूँ। वह रनधीर सोनापाली चोर था, वह ठग, विश्वासघाती था। नहीं समझीं ?

—तो चलो, आज मैं तुम्हें शुरू से बताऊँगा...!

हनुमान स्वामी

सुबह छत पर आज सात महीने बाद रामदेव पंडित दिखे। पास-पड़ोस के भक्त लोग सुबह से दोपहर तक आ-आकर उनके पैर छूते रहे। और भरे बदन की गोरी पंडिताइन, जिन्हें रामदेव महराज बड़े दुलार से 'सुरगंगा' कहते थे, एक-एक आनेवाले को हँस-हँसकर बड़े अधिकार से जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्‌जी का प्रसाद देती रहीं। ऊपर से आशीर्वाद भी।

प्रयागराज में जमुना किनारे का वह मुहल्ला, जिसका नाम कीटगंज था या अरइल घाट, यह साफ-साफ नहीं मालूम; किन्तु उस मुहल्ले में धर्म और रोजगार बहुत था—पंडागीरी से लेकर दुकानदारी, कंट्रैक्टरी और किले से नीलाम में खरीदे हुए मिलिटरी सामान, लोहे लक्कड़ के व्यापार तक। किंतु उस मुहल्ले में, बल्कि उस गली में सिर्फ रामदेव महराज पंडा न थे, न उनकी सुरगंगा पत्नी ही, शेष सब पंडा जाति के ब्राह्मण थे। इधर दो-चार घर पंजाबी भी अब आ बसे हैं और चार-छः घर मल्लाह, पासी भी।

बन्नेभाय मल्लाह था—रामदेव का पक्का दोस्त। चाट-मटर की दुकान कभी-कभी कर लेता था, नहीं तो मनमौजी अपनी काठरी में बैठा रस्सी भाँजता था और फिल्मी गीत गाता था।

सो दोपहर बाद रामदेव पर उसकी नजर पड़ी, तो वह पंडितजी के पास दौड़ा-दौड़ा आया।

"कहाँ थे पंडितजी, आप इतने महीनों तक ? दिसम्बर में गये और अब मई का महीना है न! इतने दिनों तक महाराज कोई अपना घर छोड़ता है भला !"

"क्यों, क्या हो गया बन्नेभाय ?"

सुरगंगा भीतर थी। रामदेव महराज बन्नेभाय के साथ उसकी कोठरी तक चले गये।

"कहाँ-कहाँ घूमते रहे महराज, सुनूँ तो जरा!"—बन्नेभाय पंडितजी को खाट पर बिठा कर नीचे बैठते हुए बोला।

"और कहाँ जाता बन्ने, तीरथ-यात्रा करने गया था। जगन्नाथपुरी, नहीं-नहीं, पहले गयाजी, फिर जगन्नाथपुरी और तब रामेश्वरम् और...!"

बन्ने ने सहसा बात काट दी—"पर आप अपने साथ सुरगंगा को क्यों नहीं ले गये महराज ? आप ही तो कहते थे कि स्त्री अपने यहाँ अर्धांगिनी है। उसका पुण्य-पाप...।"

"इतना पैसा कहाँ था बन्ने भाय अपने पास। अरे वही गोकुल-दास की दुकान की मुनीमी और ऊपर से यह। कथा-पूजा में कुल मिलता ही कितना है। पर हाँ, बन्नेभाय तीरथ-यात्रा बड़ी उत्तम रही।"

"वह तो रही होगी महराज; पर...।"

"क्यों, क्या हो गया ?"

"अब तक नहीं मालूम भवा आपको ? अरे, वह जमुनाबाग के सारे बंदर खतम हो गये।"

"नहीं, असंभव !"

"अरे, यही तो हुआ ही है महराज, आप रहे कहाँ ! अरे, यह जो कुन्दन पंडा है, यही तो ठेकेदार था। पाँच-पाँच रुपये पर एक-एक बंदर, छोटे-बड़े सब एक ही भाव में, सुजावल के बहेलियों के हाथ पकड़वा लिये गये और बारह-बारह रुपये में वही फी बंदर के हिसाब से कुन्दन ने व्यापारी के हाथ बेच दिये !"

"सच ?"

"हाँ, महराज, बिल्कुल सच ! और···।"

"और क्या ? हाँ, हाँ, बोलो···?"

"और आपकी पंडिताइन सुरगंगा को साथ लिये जमुना में नाव-नेवारा खेलता था। सनीमा देखाने ले जाया करता था। और मैं क्या कहूँ, आप खुद समझदार हैं।"

रामदेव महराज के सामने कुन्दन पंडा का स्वरूप कौंध गया। वह विशाल हनुमान-सेना तथा सुरगंगा का रूप चमक उठा। सुरगंगा—वह सुरगंगा, जिस की जवानी उस के ऊपर से खिसकती ही न थी। मैं क्या करूँ अपनी इस सुरगंगा को ! हे हनुमान स्वामी ! वह सोचते रहे।

हनुमान स्वामी का नाम और मंत्र जपते हुए रामदेव महराज अपने घर चले गये और सुरगंगा से शाम तक एक शब्द भी नहीं बोले। प्रसादकी झोली लिये हुए बड़े तेज कदमों से जमुना बाग में गये। सारा जमुना बाग और जमुना के किनारे-किनारे घूमते रहे। बाग के चारों कोनों तक ढूँढ़ते रहे। फिर वह हतप्रभ रह गये—हनुमानजी की सेना सचमुच वहाँ से गायब थी।

संयोगवश एकाएक उन्होंने देखा, केवल एक बड़े हनुमानजी दो छोटे-छोटे बंदर के बच्चों के साथ पीपल के पेड़ पर उदास बैठे थे।

उन्हें उस रूप में देख कर रामदेव महराज रो पड़े। कुछ दूरी पर जमुना बाग का माली पौधों को पानी दे रहा था। उसके पास पहुँच कर उन्होंने उससे हनुमानजी की सेना के विषय में फिर से पूछताछ की। माली रामदेव महराज को पिछले छः वर्षों से जानता था—उनकी सेवा और हनुमान-भक्ति दोनों।

माली ने बताया कि हनुमान स्वामी की सेना जालों में फँसा-फँसाकर, धोखे से पकड़-पकड़ कर, अमरीका और विलायत भेज दी गयी।

बंदरों को फँसाने और पिंजरों में बंद करके उन्हें मोटर और रेलगाड़ी से दिल्ली और बम्बई भेजनेकी घटना को माली शुरू से आखीर तक बताने लगा। माली जानता था कि पंडितजी के लिए यह घटना कितनी हृदयविदारक है। पिछले छः वर्षों से बारहों महीने संध्या समय किस तरह कड़े-से-कड़े दिनमें वह हनुमान स्वामी की सेना को चना-चबैना का भोग लगवाने आते थे। माली पंडितजी की भक्ति का साक्षी था।

माली जैसे-जैसे कलियुग की इस घोर अनर्थकारी घटना को उनके सामने बयान करने लगा, वैसे-वैसे रामदेव महराज फफक-फफककर रोते रहे।

एक ओर प्रभु की करुणा, दूसरी ओर कुन्दन पांडे का वह अधर्मी रूप। एक तो हनुमान स्वामी, दूसरे वह सुरगंगा।

हनुमान स्वामी की तो वह लीला थी; पर सुरगंगा कुन्दन के साथ क्यों बही ?

कुन्दन राक्षस है।

और राक्षस के संग सुरगंगा का इस तरह जाना घोर अधर्म है।

उस क्षण रामदेव महराज की आँखों के सामने रावण और सीताहरण का दृश्य चमक उठा।

पर नहीं, नहीं, कुन्दन रावण नहीं हो सकता। वह केवल राक्षस है और सुरगंगा केवल जवान स्त्री है—प्राकृत जन, जिन की याद से सिर धुनकर पछताने की बात गोस्वामी तुलसीदासजी ने कही है :

कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना।
सिर धुन लाग गिरा पछताना॥

हाय, घोर अन्याय हो गया !

आँसू पोंछते हुए रामदेव महराज फिर उसी पीपल के नीचे प्रसाद की झोली फैला बैठ गये—कातर दृष्टि में भक्ति और करुणा घोले हुए, पीपल की डार पर हनुमानजी को देखते हुए। बड़े हनुमानजी परम एकाकी

पीपल की डार पर हाथ-पैर फैलाये परम वैराग्य भाव से लेटे हुए थे। उनके आगे-पीछे वही दो शिशु बंदर अत्यन्त भक्ति-भाव से प्रभु के क्लांत शरीर को सहलाने और उनकी सेवा में रत थे। नीचे से रामदेवजी वीतराग हनुमानजी के झूलते चरणों को एकटक निहार रहे थे और झोली फैलाये प्रसाद की भेंट स्वीकार कराने के लिए अभियोगी की तरह आँसुओं के बीच उनसे प्रार्थना कर रहे थे।

पर हनुमानजी निर्विकार रूप से शयनमग्न थे। बीच में एक बार दोनों शिशु बंदर पूँ-पूँ करके डार से जरा नीचे खिसकने को हुए कि बड़े हनुमानजी ने उन्हें झपट कर चिकोटी काट ली। दोनों बंदर चें-चें करते हुए निःसहाय स्वामी की शरण में दुबक गये। नीचे से रामदेवजी मंत्रमुग्ध होकर स्वामीजी की लीला देखते रहे।

थोड़ी देर बाद हनुमानजी भक्तपर प्रसन्न हुए और अपनी सेना के साथ अति शंकित, दबे पाँव, नीचे आये। रामदेवजी गद्‌गद् होकर प्रसाद सामने रख वहीं जमीन पर साष्टांग प्रणाम करते मुँह के बल लेट गये। थोड़ी देर बाद जब उन्होंने सिर उठाया, तो हनुमानजी प्रसाद की थाली सहित पेड़ पर विराजमान थे।

रात को घर पर लौट कर रामदेवजी अपनी प्रिय पत्नी सुरगंगा के बहुत बुलाने पर भी न बोले।

भोजन के उपरान्त अपने नियम के अनुसार, सुरगंगा रामदेव के चरण दबाने गयी। पंडितजी ने बहुत पैर खींचा, बहुत मना किया सुरगंगा को; पर वह एक बार पैर पकड़ कर फिर उसे छोड़ने को न तैयार हुई।

सुरगंगा पंडितजी के भक्त हृदय और उनके कोमल मन से खूब परिचित थी। पंडितजी का मन क्यों सहसा इस तरह दुखी हुआ है और वह क्यों एकाएक ऐसे चुप हो गये हैं, उस के पूरे भार को सुरगंगा महसूस कर रही थी।

"महराजजी, मुझ से ऐसी क्या गलती हुई है ?"

सुरगंगा के इस प्रश्न से रामदेवजी का दबा हुआ क्रोध सहसा फूट पड़ा।

"इस प्रश्न को तुम जाकर कुन्दन पंडा से पूछो।"—उन्होंने कहा।

"ओ हो महराज, अब मैं समझी ! तो आप के कान उस मुँहजरे बन्ने ने भरे हैं।"

"तो क्या बन्ने भाय मुझ से झूठ बोलेगा ?"

"तो क्या मैं आप से झूठ बोलूँगी ?"

रामदेव सुरगंगा का गोरा-गोरा मुख निहारकर रह गये। पर जिस क्षण उस अधर्मी, हनुमान-द्रोही कुन्दन पंडा के मुख की सुधि हुई—काला कलूटा कसाई जैसा कुन्दन, तो रामदेवजी का मन फिर खराब हो गया—बेहद। पलंग पर से तिलमिला कर बोले—"बोल, तू उस अधर्मी के साथ अपने इस घर से बाहर गयी थी ?"

"जरूर दो बार गयी थी, उन के संग बाहर। वह आप के इतने अभिन्न मित्र, अपने इतने विश्वासी पड़ोसी।"

"बस-बस, सुरगंगा। तू मुझे ज्यादा उपदेश मत दे। यह बता, तू कहाँ-कहाँ गयी थी उस के संग ?"

"एक बार जमुना किनारे हनुमान मंदिर में, और दूसरी बार चौक के बड़े हनुमान मंदिर में।"

"झूठ है। बन्ने भाय ने मुझे साफ बताया है, एक बार तू उस अधर्मी के साथ जमुनाजी में नेवारा खेलने गयी और दूसरी बार उसके साथ सनीमा देखने।"

"हाय राम ! यह झूठ !"

सुरगंगा के आँसुओं से रामदेवजी का मन दहल उठा। फिर पिघलते हुए स्वर में बोले—"जो कुछ भी हो, सुरगंगा सुनो, इस में तुम्हारा दोष नहीं है। इसमें सारा दोष उस अधर्मी कुन्दन का है ! विश्वासी ही

विश्वासघात करता है। धर्म का लोभी ही धर्म को बेचता है। वह हनुमान-सेना को ही बेच बैठा। मैं भुगत लूँगा उस कुन्दन से।"

"कैसी हनुमान-सेना ?"

"ओ हो, तुझे नहीं पता ! अरे, उस अधर्मी ने जमुना बाग की सारी हनुमान-सेना को पकड़वा कर दिल्ली-बम्बई के महाजनों के हाथ बेच दिया।"

"अरे, यह तो मुझे नहीं मालूम ! हनुमान भक्त होकर उसने ऐसा क्यों किया ?"

"हनुमान-भक्त नहीं, वह हत्यारा है, हत्यारा। और तुम सुरगंगा, तुमको भी न जाने क्या हुआ था। दंड तो भोगना ही होगा। और उस कुन्दन से मैं अपने हनुमान स्वामी का ऐसा बदला लूँगा कि उस के सात पुस्त आगे और सात पुस्त पीछेवाले उसे सदा याद रखेंगे।"

सुबह कुन्दन पंडा रामदेव महराज के घर आये। घर पर पंडितजी न थे—गंगा-स्नान के लिए गये थे। सुरगंगा ने कुन्दन को सब बातें बतायीं। कुन्दन चुप सुनता रहा।

सुरगंगा ने फिर कुन्दन से रूठकर कहा—"बंदर फँसानेवाली बात तुमने मुझसे क्यों छिपायी ?"

कुन्दन ने उत्तर दिया—"मैं तुम से डरता था। सबसे बड़ा डर इस बात का था कि बंदर के व्यापारवाली घटना से तुम कहीं मुझ से घृणा न करने लगो।"

"नहीं, नहीं, पंडित। भला मैं तुम से कभी घृणा कर सकती हूँ ! मेरे पंडित महराज ने आज तक मुझे इतना आदर-सम्मान दिया, तुमने मुझे इतना मान दिया, यह कोई मामूली बात थोड़े ही है।"

"तो बोला, मैं क्या करूँ ? मुझे कोई उपाय या कोई भी दंड बताओ, वह मुझे मान्य होगा—ताकि पंडितजी मुझे हृदय से क्षमा कर दें।"

"मैं उपाय और दंड बताऊँ महराज ?" सुरगंगा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में मुस्करा कर कहा—"अब मेरी गली न आया करो।"

"हँसी न करो पंडिताइन।"

कुन्दन ने चिंता में सिर झुका लिया। सुरगंगा दहलीज में खड़ी हँस पड़ी।

"ऐसे न हँसो पंडिताइन। वह बन्ने अपने कमरे से हमें देख रहा होगा।"

"देखा करे न आँख फोड़-फोड़ कर। मुझे अपने पर विश्वास है कि...!"

"और अपने पंडित पर ?"

"उन पर तो अपने से भी ज्यादा मेरा विश्वास है।"

"और मुझ पर ?"—कुन्दन ने सुरगंगा को अपनी दृष्टि से बाँधकर पूछा।

सुरगंगा की आँख सहसा नीचे झुक गयी। कोमल स्वर में बोली—"महराजजी, तुमने इस तरह जमुना बाग के सारे बंदरों को बेच कर बहुत बुरा किया। तो तुम हनुमान-भक्त नहीं हो, क्यों महराज ?"

सुरगंगा ने कई बार पूछा; पर कुन्दन के मुँह से कोई भी शब्द न निकला और उसी तरह चुपचाप वह बगल की गली में मुड़ गये।

सुरगंगा स्वभाव से हँसमुख थी, हृदय से भावुक, कोमल। स्नेह व मान पाने और देने की अत्यधिक क्षमतावाली, अपेक्षावाली और आकांक्षा वाली थी। ऊपर से वह आज तक पुत्रहीन भी थी। अवस्था पैंतालिस से कम न थी; पर उसके शरीर के पत्ते जैसे पीले ही नहीं होना चाहते थे, जैसे वे अब भी बसन्त आने की आस लगाये, मायावश उसी पेड़ से लगे थे। हरा-भरा सुरगंगा का वृक्ष। पल्लवों के बीच अनदेखे पुष्प और अजन्मे फलों को छिपाये हुए।

अगले दिन मंगलवार था। संध्या समय रामदेव महराज चौक के

हनुमान-मन्दिर में पूजा करने के लिए घर से बाहर निकले। उसी समय बन्ने भाय ने पंडितजी को सूचना दी कि जमुना बागमें इस समय फिर वही बहेलिया आया है। उन बचे हुए हनुमानजी को वह कपटजाल से पकड़ेगा। इस समय एक बंदर की कीमत पचास रुपये है।

रामदेव महराज क्रोध से लाल हो गये—जै महावीर स्वामी की ! आज आपने शत्रु से बदला चुकाने के लिए बहुत ही उत्तम संयोग दिया। धन्य हो स्वामी !

हाथ में फरसा लिये हुए रामदेव महराज जमुना बाग की ओर दौड़े। उस पीपल के पेड़ से आगे, नीम के पेड़ के नीचे, वास्तव में एक काला-कलूटा आदमी, कंधे पर अंगोछा रखे, दायीं काँख में एक छोटा-सा मोटा डंडा दबाये, हाथ में लड्डू का बड़ा-सा दोना लिये, उन तीनों बंदरों के बीच झुका खड़ा था।

पंडित रामदेव पीपल के पीछे छिपकर देखने लगे और साँस रोके अपने दाँव की प्रतीक्षा करने लगे। सहसा उस झुके हुए आदमी का मुख पीपल की ओर घूमा, तो पंडितजी की बाहें फड़क उठीं। वह कुन्दन पंडा ही था, जो बड़े छल से दो लड्डू बड़े हनुमानजी को देता और एक-एक लड्डू उनके दोनों शिष्यों को। फरसा ताने, दाँत पीसते हुए रामदेवजी अपने दाँव की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब वह अधर्मी उन शिष्य बंदरों में से किसी एक पर हाथ लपकाये कि रामदेवजी कुन्दन का उसी क्षण वह हाथ कलम कर दें। साथ-ही-साथ रामदेव महराज हनुमान स्वामी की लीला और उनकी सरलता पर मुग्ध हो रहे थे कि देखो, पवनसुत की महिमा कितनी अपार है ! शत्रु और विश्वासघाती पर भी इतना प्रेम, इतना विश्वास !

बड़े हनुमानजी अपने शिशु-भक्तों के साथ अधर्मी कुन्दन के बिल्कुल पास आ गये थे। रामदेव महराज क्रोध, आशंका और आवेश में थर-थर काँप रहे थे।

कुन्दन ने सहसा लड्डू के दोने को जमीन पर रख दिया। रामदेव फरसा ताने हुए पीपल के पीछे से आगे बढ़े; लेकिन सहसा स्तब्ध रह गये। कुन्दन पंडा हनुमानजी के सामने साष्टांग प्रणाम करता जमीन पर मुँह के बल बिछ गया है और रोते हुए कंठ से कह रहा है—"हे पवन-सुत हनुमान स्वामी, मुझ अधर्मी को क्षमा करो। अपनी लड़की की शादी में कर्जदार हो गया था, उस का सूद मेरे सिर पर लदता जा रहा था। उस से मुक्ति पाने के लिए मैंने यह अधर्म किया।"

रामदेव महराज के हाथ से फरसा छूट कर जमीन पर गिर गया। कुन्दन अब तक उसी शरणागत मुद्रा में लेटा था। फरसे को जमुना बाग की झाड़ी में फेंक कर रामदेवजी अपने घर पहुँचे और सुरगंगा को बड़े प्यार से अपने पास बुला कर बोले—"आ सुरगंगा, सुनती हो न, वह बेचारा कुन्दन तो अपने हनुमान स्वामी का बड़ा भक्त है।"

"हाँ, महराज, यही तो मेरा भी विश्वास था।"

यह कह कर सुरगंगा ने पति को पीने के लिए एक गिलास शीतल जल दिया और प्रसन्न-वदन पति के पास खड़ी होकर वह पंखा झलने लगी।

"तो सुरगंगा, सुनो···।"

"हाँ महराज···।"

"तैयार हो जाओ झटपट, आज मैं तुम्हें अपने संग हनुमान मंदिर ले चलूँगा।"

सुरगंगा पति को एकटक निहारती रह गयी।

●

पुलपुल बाबा

जाति के पुलपुल बाबा ठाकुर थे। अवस्था भी यही साठ-पैंसठ साल की और मुंह में न एक दाँत, न सिर पर एक बाल काला। देखने से लगते थे सत्तर साल के पुरनियाँ, पर स्वभाव और प्रकृति में बिल्कुल लड़के-जैसे, बड़े ही मसखरे, बड़े ही खिसनिपोर। छोटे-छोटे बच्चों से उनकी माई का मजाक, बड़े लड़कों से उनकी भौजी का, और औरतें तो उन से दस परग दूर ही भागती थीं। छीः छीः कैसा-कैसा मजाक कर बैठते थे, पुलपुल बाबा। तभी तो देह पर दुबारा हल्दी न लगी। बुड्ढे होने को आये, पर खीस निपोरना न गया। मरने की उमर आयी, और श्मशान पर चार बोझ लकड़ी की चिंता नहीं करते बनता, देखो न, बुढौना को, उल्टे 'कबीर आरारारा' बोलता है···फाग-झूमर··· आल्हा ··सावन-चैती। दाँत एक नहीं, पर मुंह में मानो बात की बारात उठती रहती है। ऊपर से 'ही ही ही ही ही ही ही।'

फिर भी, पुलपुल बाबा का अदब, सारा गाँव-जवार मानता था। पुलपुल बाबा के पिता ठाकुर चइत्तर सिंह नामी आदमी थे। बड़े धर्मात्मा और वीर पुरुष। बड़े लाड़-प्यार से पुलपुल बाबा का बचपन बीता था। जीने के लिए ही उनका नाम 'पुलपुल' रखा गया था। न स्कूल का मुंह देखा पुलपुल बाबा ने, न कभी चार अच्छे आदमियों में बैठे। अखाड़े में कुश्ती लड़ना, फाग और आल्हा गाना तथा गाँव-जवार में जुलफी में तेल लगाकर बाँसुरी बजाते फिरना, और इधर-उधर

मेले-ठेले में लाठी चलाना, फौजदारी करना—यही पुलपुल बाबा की जवानी थी। सुनते हैं कि एक बार चमरटोला की एक चमाइन की लड़की जब ससुराल के लिए बिदा होती हुई गाँव की औरतों के संग रो रही थी, पुलपुल बाबा उन जवानी के दिनों में, उसके विरह में उससे ज्यादा बिलख-बिलख कर रो रहे थे—रास्ते के एक आम के पेड़ की डाल पर बैठे-बैठे। ऐसी कितनी ही घटनायें और स्मृतियाँ पुलपुल बाबा की जवानी से जुड़ी हुई थीं।

उन्हीं दिनों, इन्हीं संस्कारों और कुसंगतों के कारण, पुलपुल बाबा में एक बड़ी बुरी आदत पड़ गयी—चोरी करने की। छप्पर उठाकर घर में कूद कर चोरी करने, सेंध लगाने, बगली काटने, घरघुसवा बनकर एक ही रात में दस घरों में चोरी करने में, पुलपुल बाबा सिद्धहस्त हो गये थे। कहते हैं लोग कि बाबा ने एक जोगनी सिद्ध कर रखी थी। वह जोगनी पुलपुल बाबा को आगे चल कर रात में चैन से सोने नहीं देती थी। कभी वह चुड़ैल का रूप धारण कर उन्हें सताती थी, कभी डंकिनी का बाना पहन कर उन्हें इधर-उधर भरमाती फिराती, पर ज्यों-ज्यों पुलपुल बाबा की उमर खसकती गयी, युवक से वृद्ध होते गये, त्यों-त्यों चोरी करने की कर्मठता उन में स्वभावतः कम होती गयी। पर मुश्किल तो यह, कि उनकी चोरी की देवी···जोगनी उन्हें शान्ति से बैठने नहीं देती थी। उन के बदन में जैसे वह चिकोटी काटती रहती थी, और उससे परेशान पुलपुल बाबा बहुत दुखी रहने लगे थे।

इसकी शांति के लिए वे एक जोग साधना करने लगे। वह अपनी इस जोगनी की पूजा करते थे—सवा सेर लड्डू, एक लाल रूमाल, एक लोहे का चाकू और सवा सेर तिल और दो पलीते की रोशनी; सवा सौ 'बम्म भोले' का नाम पाठ और फिर जोगनी का मंत्र·····।

काली बिच्छी काला तिल, सब का धन माँ को मिल,
छू मंतर कलकत्ते वाली, आज रात को हाथ न खाली,
सौ पहरू, माँ कर रखवाली।

जोगनी के उस मन्त्र को महज जगाने के लिए पुलपुल बाबा वर्ष में अब केवल दीवाली की रात को चोरी कर लेते थे। कोई बड़ी चोरी नहीं, मामूली चोरी···किसी के हल का फाल चुरा कर रख लेना, किसी के दरवाजे से टँगे कपड़े झटक लेना, कुछ नहीं तो जूता-खड़ाऊँ ही झपट लेना। मंत्र तो जगाना ही पड़ता था, बेचारे पुलपुल बाबा को और इस तरह उन्हें अपनी जोगनी को शान्त करना ही पड़ता था।

इस साल अमावस से एक रात पहले पुलपुल बाबा को जोगनी ने साक्षात् स्वप्न दिखाया, और कहा कि, "हे बेटा, मैं देख रही हूँ अब तू बुड्ढा हो गया है। अब तू मेरी पूजा-पाठ करने में असमर्थ होता जा रहा है। तूने मेरी बड़ी पूजा की है। तीस वर्षों से मैं तेरी देह पर थी और तेरा कोई कभी कुछ नहीं बिगाड़ सका···न पुलिस, न चौकीदार, न कोई आदमी या जानवर। तो हे बेटा, अब तू खबरदार होकर सुन ले! इस दीवाली की रात को तू मेरी आखिरी पूजा कर दे...कोई अच्छी मालदार चोरी...फिर मैं तेरे शरीर को छोड़ कर कहीं और चली जाऊँगी।" पुलपुल बाबा ने स्वप्न में देखा, जोगनी यह कह कर, काले गधे पर सवार होकर, आसमान में उड़ गयी।

पुलपुल बाबा को बड़ी खुशी थी, कि अब उन्हें जोगनी से मुक्ति मिल जायेगी। पर उन्हें चिंता भी तो हो गयी, कि जोगनी ने अपना आखिरी परसाद जो माँगा है, वह कहाँ से कैसे दूँ! अच्छी मालदार चोरी!

पर यह मेरे शरीर पर सवार जोगनी मुझे छोड़ कर चली जायगी। पुलपुल बाबा के वृद्ध शरीर में कहीं से शक्ति संचित होने लगी।

दीवाली के दिन सुबह से पुलपुल हाथ में डंडा लिये पहले अपने गाँव

से काली माई के स्थान पर गये। वहाँ माथा टेक कर, वह सीधे उत्तर दिशा में मुड़े, और मटेरा गाँव में जा पहुँचे। पर इस गाँव में कुत्ते कितने हैं! इतने बड़े-बड़े और ताकतवर कुत्ते। पुलपुल बाबा के पीछे-पीछे बराबर भूँकते घूम रहे थे। एक बार बाबा ने लाठी घुमा कर कुत्तों को मारना चाहा, पर उनके पैर काँपने लगे। एक बार कुत्तों को दौड़ाना चाहा, पर सहसा उनकी साँस फलने लगी और उनका दम उखड़ गया। कुत्ते और भी क्रोध से, पुलपुल बाबा के पीछे-पीछे भूंकने लगे और तब तक भूँकते रहे, जब तक पुलपुल बाबा उनकी आँखों से ओझल न हो गये।

रात हुई। पुलपुल बाबा ने अंधकार में दौड़कर अंदाज लगाया कि वह कितना भाग सकते हैं। पर अन्दाज कितना गलत निकला। वह तो दौड़ सकते ही नहीं। गांजा-चरस पी-पीकर सारा कलेजा जो भस्म हो गया है।

पास ही कहीं सहसा मुआचिरई बोलने लगी। रात बीतने को आयी, पर जुगाड़ कहीं कुछ नहीं।

पुलपुल बाबा सहम कर अपने घर की ही ओर बढ़ने लगे।

बाबा के घर, उनके दो भतीजे और उनकी बहुएँ और बच्चे थे। बाबा की एक विधवा बहन थीं—लौंगा बुआ—पचास साल की अवस्था की।

पुलपुल बाबा जब अपने घर पहुँचे, उस समय चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। सब बेसुध सो रहे थे। पुलपुल बाबा को सहसा याद आया, लौंगा बुआ का काठ का वह बक्स—जिसे लेकर वह बीस वर्षों पूर्व अपनी ससुराल से लौटी थीं—उस में उनकी सोने की नथ थी—मटरमाल और कंठा था—पाँच सेर के करीब चाँदी के गहने थे और··· और···।

बाहर ही पुलपुल बाबा की आँखों में जैसे खून बरसने लगा हो।

किवाड़ खोल कर वह तेजी से भीतर गये। बुआ भीतर से अपने किवाड़ बन्द किये हुए, सो रही थीं। बाबा ने झट किवाड़ की बगली काटी, और पट कमरे में घुस गये। बुआ कुकुरनियाँ सोती ही थीं··· झट बोलीं···"कौन है रे ?" बाबा आवेश में थे। उन्होंने झपट कर बुआ के मुँह पर एक हाथ मारा। बुआ मामूली न थीं।...उन्होंने अदृश्य चोर को चुनौती दी। पर बाबा में आज वही पुरानी शक्ति आ गयी थी।...सिर पर, बाहों में जैसे जोगनी का परसाद बोल रहा था। उन्होंने बुआ के मुँह में कपड़ा ठूँसकर, उन्हें उनकी खाट से बाँध दिया। और झट-पट बुआ के बक्स से वह वजनी गठरी निकाल ली, जिस में बुआ का वह सारा गहना बँधा रखा था। कुछ रुपये भी खनके, बाबा ने झटपट सब कुछ ले लिया और बाहर भाग आये।

फिर पुलपुल बाबा सीधे मनवर नदी की ओर चले गये। सारे गहने ले जाकर उन्होंने एक जगह, जब गाड़ना चाहा, तब उन्हें सहसा याद आया, कि बुआ के मुँह में तो कपड़ा ठूँसा ही रह गया और इस तरह वह खाट में बँधी हुई, दम तोड़ रही होंगी।

पुलपुल बाबा उसी दम घर लौटे।

सुबह हो गयी थी। घर में कुहराम मचा था। बेहोश बुआ आँगन में लिटायी हुई थीं।

पुलपुल बाबा को देखते ही सब लोग चीख-चीख कर कहने लगे··· "कहाँ थे तुम ? देखो न, चोरों ने बुआ को लूट लिया न ! अब बुआ नहीं बच सकतीं। तुम्हारे जीते तुम्हारी विधवा बहन की यह दुर्दशा !"

पुलपुल बाबा ने अपने कम्बल के नीचे से कुछ टटोलते हुए गहने की वही गठरी निकाली। उसे खोलकर लौंगा बुआ के चरणों में रख दिया, और भरे कंठ से बोले, "चोर को मैंने पकड़ लिया, नदी में उसे डबा आया। अब वह चोर···कभी नहीं दिखेगा !"

यह कहते-कहते पुलपुल बाबा जोर से हँस पड़े।

बेहोश लौंगा बुआ की आँखें खुलीं, और उन्होंने अपने गहने को छाती से लगा लिया।

लौंगा बुआ ने कहा, "पर बबुआ तुम रो क्यों रहे हो ? उस चोर ने तुम्हें मारा है क्या ?"

"नहीं रे बबुनी, मैंने उसे मारा है।" पुलपुल बाबा ने मुस्कराते हुए कहा।

●

चोर राजा चोर

राजा भइया ने अपनी नयी दुकान में रेडियो भी लगा लिया। पर-चून की दुकान में रेडियो—मुहल्ले के बुजुर्ग लोगों के लिये यह एक नयी बात थी। पर मुहल्ले के लड़के राजा भइया से बहुत प्रसन्न थे—और लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ भी। लड़कियों को वह सदा बहनजी कहता था, औरतों को माताजी, लड़कों को भइया और बड़ों को बाबूजी।

कितने अच्छे शील-स्वभाव का है राजा भइया!

मजाल क्या कि कोई भी उसकी दुकान से असंतुष्ट लौटे। बच्चों के स्वागत में लेमनजूस, भइया-बाबूजी के अनुसार बीड़ी-सिगरेट, लौंग-इलायची, दोनों कर जोर सब को प्रणाम, सब की राजा-खुशी!

पास-पड़ोस के घरों का जैसे वह अभिन्न अंग हो गया। घरों में बेखटके आना-जाना, किसी की तबीयत खराब हो जाय, फौरन डाक्टर बुला देना, साइकिल से समय-असमय पर दवा ला देना, रोते और झगड़ते बच्चों को शान्त कर देना और उन्हें मना लेना, उसका प्रीतिकर स्वभाव बन गया था।

अपने एक-एक ग्राहक को वह पूर्णरूप से समझता था—उनकी आर्थिक स्थिति, उनके संकट और मजबूरी को बहुत ही सहानुभूति से देखता था।

इधर एक दिन अखबारवाले पंडितजी आये और राजा भइया की बंद दुकान का ताला भड़भड़ाने लगे :

'महाजन ओ महाजन!'

'क्या है पंडित जी?' सामने से आता हुआ कन्हई बोला, 'देखते नहीं, ताला बंद है, फिर पुकारते किसे हैं?"

'कहाँ गये राजा भइया?'

'मिर्जापुर अपने घर गये हैं।'

'आजकल महाजन बहुत घर जाने लगे हैं!"

इधर-उधर से टहलते हुए अखबार पढ़नेवाले लोग महाजन की दुकान पर आने लगे। बच्चूलाल ने कहा, 'इधर मैं अक्सर देख रहा हूँ कि महाजन दूकान बंद करके गायब हो जाता है। बात क्या है?'

मुन्ना भइया ने बताया, 'दिन को तो रहता है, शाम को शायद मिर्जापुर चला जाता है। जैसा कि कन्हई बता रहा है।'

इसी बीच लोग अखबारवाले पंडित का अखबार पढ़ते रहे, पंडित जी खैनी-सुरती बनाते हुए 'हाँ हूँ' करते रहे। और जब रम्मन बाबू ने उनसे 'फिल्मफेयर' देखने को माँगा, तब पंडितजी सहसा सुरती फाँककर अपने रास्ते लगे।

श्यामबिहारी लाल पेशकार साहब गंगा स्नान करके लौट रहे थे। महाजन की दुकान पर लोगों के बीच वे खड़े हो गये। राजा भइया के विषय में उन्होंने बताया कि कल उन्होंने उसे कचहरी में घूमते हुए देखा था।

'अच्छा! कल वह कचहरी में था! क्यों रे कन्हई, तू तो कह रहा है कि राजा भइया अपने घर मिर्जापुर गया हुआ है?' पोस्टमास्टर साहब कन्हई की आँखों में देखने लगे।

कन्हई ने हकलाते हुए कहा कि उसे यही मालम है। फिर रुककर कहने लगा कि 'कचहरी में कुछ कागज लेने की जरूरत रही होगी।'

'कचहरी में उसे कैसा कागज लेने की जरूरत पड़ी?' बच्चूलाल ने पूछा।

'पता नहीं बाबू मुझे !' कन्हई ने कहा, 'दुकान अभी दोपहर में खुलेगी।'

लोग अपने-अपने घर चले गये। कन्हई बंद दुकान के सामने झाड़ू देने लगा।

बाबू बजरंगी प्रसाद की पत्नी ने जँगले के भीतर से कन्हई को बुलाया। कन्हई जँगले के पास नीचे झुककर अनाज के दाने बीनने लगा।

बजरंगी प्रसाद की पत्नी को कोई बाल-बच्चा न था—दूसरी शादी थी यह। पहली पत्नी से तीन छोटे-छोटे लड़के हैं, जो स्कूल में पढ़ते हैं, क्रमशः तीसरी, पाँचवीं और छठी जमात में।

बजरंगी की पत्नी बानी बहू ने पूछा, 'राजा भइया कहाँ है ?' कन्हई ने उठकर धीरे से कहा, 'कहीं गये हैं, मुकदमे की तारीख थी कल। आज दोपहर तक आ जायेंगे।'

'कल कुछ खा-पीकर भी नहीं गया।'

'क्या बताऊँ माँ जी !'

यह कहकर कन्हई वहाँ से दुकान के सामने हट आया।

राजा भइया पहले अपना भोजन स्वयं बनाता था। फिर वह कन्हई से भोजन बनवाने लगा, और बाद में वह पास के एक 'स्टूडेन्ट रेस्ट्राँ' में खाने लगा। दुकानवाले कमरे के अतिरिक्त उसके मकान का पिछला सारा हिस्सा बेकार पड़ा रहता था। भीतर के आँगन से बरामदे में एक दरवाजा था, जिसका किवाड़ बाबू बजरंगी ने भीतर से खूब मजबूती से बंद कर लिया था, ताकि घर से महाजन का हिस्सा बिल्कुल अलग रहे।

पर अब यह बंद दरवाजा ढीला रहने लगा। थोड़ा-सा दरवाजा खोलकर उसकी दरार से बानी बहू कभी-कभी राजा भइया से बातें करती हैं।

और अब राजा भइया बजरंगी प्रसाद के घर का बना हुआ भोजन करने लगा। उसने एक दिन बानी बहू से कहकर अपने मकान के पिछले दोनों कमरों को मकान-मालिक बजरंगी बाबू को धीरे से वापस कर दिया। इस तरह अब उसे सिर्फ दुकान के बीस रुपये ही महीने किराये के देने पड़ते हैं।

बाबू बजरंगी प्रसाद पुलिस दफ्तर के रिटायर्ड हेड क्लर्क थे। धार्मिक विचारों में वह शैवमार्गी थे—शिव, दुर्गाजी और तारादेवी की उपासना में वह नित्यप्रति संध्या समय अपने घर के बाहर बरामदेवाले कमरे में अपने कुछ मित्रों-सहित पूजा-अर्चना और कीर्तन-आरती किया करते थे। राजा भइया जैसा उत्तम आदमी और उसके ममतामय स्वभाव को पाकर बाबू बजरंगी प्रसाद अपने घर से काफी आश्वस्त हो गये थे। घर का आवश्यक प्रबंध वही कर देता था—नमक, तेल, लकड़ी राशन वगैरह-वगैरह।

पर राजा भइया दोपहर को आने की कौन कहे, शाम और रात तक न आया। बानी बहू ने उसकी चिंता में रात को भोजन नहीं किया। उसके आने की राह देखती रह गयी।

और परम आश्चर्य की बात यह है कि राजा अगले चार दिनों तक न आया।

पाँचवें दिन राजा भइया कन्हई के साथ काफी रात बीते अँधेरे में लौटा। बानी बहू जाग रही थीं। बहू राजा को देखते ही आर्द्र हो गयीं।

राजा भइया का मुख बिल्कुल सूखा हुआ था। कपड़े गंदे, दाढ़ी बढ़ी हुई और सारी सूरत बेतरह उतरी हुई। वह नितान्त भूखा-प्यासा था ! बिना हाथ-पैर धोये ही वह झपट कर खाना खाने लगा।

बानी बहू ने राजा को भोजन कराने के बाद दुख से पूछा, 'कहाँ थे ?'

राजा चुप था।

'कहाँ चले गये थे ?'

राजा बहू को देखकर चुप रह गया।

'भिर्जापुर गये थे या कहीं···?'

राजा भइया बहू के सामने से नतशिर हटने लगा।

'मुझे नहीं बताओगे ?'

राजा भइया के पैर रुक गये। अपने मुँह पर हाथ रखकर उसने आँख झुकाये हुए कहा, 'जिला कचहरी में मेरे उस मुकदमे की अपील थी। सिसिन जज ने अपील खारिज कर दी। मैं जेल भेज दिया गया। आज जमानत पर छूटा हूँ।'

बानी बहू उसे देखती रह गयीं।

राजा भइया बहुत देर तक वहीं सिर झुकाये खड़ा रहा। सितम्बर के आखिरी दिन थे। आँगन के एक कोने में चाँदनी सिमटी थी। कभी वह चाँदनी धूमिल हो जाती थी, कभी उज्ज्वल स्निग्ध। धुले आसमान में मोटी रुई की तरह इधर-उधर बादल तैर रहे थे। राजा-भइया आगे बढ़कर फिर रुक गया। काँपते स्वरों में बोला, 'बहू ! तुम्हारे सिवा मेरी कथा कोई और न जाने। मैं संघर्ष कर रहा हूँ, आप की कृपा रही तो मैं एक दिन जीतकर रहूँगा। सिसिन जज की कचहरी से नौ महीने की मेरी वही सख्त सजा बहाल हुई है। यह सजा कोई बड़ी नहीं है। लेकिन जिस तरह से मुझे सजा दी जा रही है, वह जरा·····।'

राजा भइया की आँखों में आँसू उमड़ आये, पर वह कटुतामिश्रित करुण स्वर में बोला, 'मेरी औरत ने गवाही दी है। इजलास के बाहर उससे मैंने दूर से कहा कि, कमला मैं तेरा पति हूँ। मेरे ससुर ने गुस्से में कमला से कहा कि थूक दे इसके नाम पर। उसने झट मेरे नाम पर थूक दिया। मैं दूर था, वरना शायद वह मेरे मुँह पर ही थूक देती।'

'वाह री औरत !'

कितनी बेरहम सजा है ! और इस सजा का अंत कहाँ है ?

राजा भीतर से अपनी दुकान में चला आया।

रात के एक बज रहे थे। सहसा दुकान में बिजली जलाते ही उसने देखा, कितने बड़े-बड़े चूहे उसकी दूकान में दौड़-दौड़ कर सामान खा रहे थे। कितने बोरे कटे थे, कितनी टिनें, और शीशे-मिट्टी के मिर्तबान खुले,ढरके और टूटे पड़े थे। राजा सब कुछ उसी रूप में देखता रहा, उसकी हिम्मत न हुई कि वह कुछ उठाकर ठीक करता, या सँभाल लेता। उसकी दृष्टि दीवार पर टँगी फिल्म-तारिकाओं पर गयी। वह झपट कर दौड़ा और सारी तस्वीरों को चीर-फाड़ डाला।

अगले दिन सुबह से राजाभइया फिर अपनी दुकान में लग गया। सबको अपनी वाणी और व्यवहार से संतुष्ट करने लगा।

लेकिन प्रायः हर सप्ताह में दो दिन के लिए राजा दुकान से गायब हो जाता है। लोगों को उसने बताया है कि उसकी दो बहनें हैं, बड़ी बहिन की शादी तय करने में उसे इधर-उधर जाना-आना पड़ जाता है। बड़ी जिम्मेदारी है बेचारे पर। देखो न, दुकान भी चलाता है और गरीब घर का भी सारा बोझ अपने ऊपर लिये रहता है। पर अब राजा की अनुपस्थिति में उसकी दुकान बंद नहीं होती। सामने लेने-देने का काम कन्हई भी कर लेता है, और रुपये-पैसे का हिसाब कभी बजरंगी बाबू कर लेते हैं, और कभी मौका पड़ने पर बानी बहू भी दुकान देख लेती हैं। लोगों को आभास होने लगा कि राजा की दुकान में कुछ हिस्सा बजरंगी बाबू का भी है। ठीक भी है, मुहल्ले के लोग सोचते थे, कि बजरंगी बाबू रिटायर्ड आदमी हैं, चलो यह अच्छा ही है, इसमें बुरा क्या है।

राजा ने अब तक बानी बहू से अपनी कथा को केवल इस तरह

बतलाया था, कि उसकी औरत अच्छी नहीं थी, बदमाश निकल गयी थी, इसीलिये उसने पत्नी को छोड़ दिया है। ससुर ने राजा पर महज बदला लेने के लिए मुकदमा चलाया है। राजा वह मुकदमा आनरेरी मजिस्ट्रेट के यहाँ हार गया है—उसी की अपील अब सेशन जज के यहाँ से भी खारिज हो गयी है।

पर आज राजा की मनोव्यथा उसकी बातों से प्रकट होना चाहती थी। उसके मन की विकलता बानी बहू को पूर्ण रूप से छू लेना चाहती थी। राजा आँसुओं से भरा हुआ बादल है। बानी बहू स्नेह-मयी धरती है। बादल के बरसने के लिये पात्रता मिल गयी है।

राजा ने भावमय होकर बताया कि किस तरह बचपन में उसकी शादी करछना के एक बड़े महाजन की सब से छोटी, उसकी तीसरी लड़की कमला से हुई। उसके ससुर के यहाँ कितने बड़े पैमाने पर आढ़त का कारोबार होता है। सैकड़ों मन अनाज का लेन-देन उस तहसील में चलता है। राजा, ससुर के ही यहाँ घरजमाई के नाम पर बिल्कुल नौकर की तरह रहता था। दिन के दिन घोड़े की पीठ पर अनाज के बोरे लादकर गाँव-गाँव वह बिना खाये-पीये घूमता था। जरा-सी गलती होने पर ससुर उसे हंटरों से पीटता था। कमला ने राजा को कभी भी पति के रूप में नहीं देखा। वह भी उसे एक नौकर के रूप में ही देखती थी। राजा के अतिरिक्त दो बड़े दामाद और भी ससुर की दुकान पर बिल्कुल नौकर की ही तरह जीवन व्यतीत कर रहे थे। पर उन दामादों की बात और ही थी। वे एक तरह से मर चुके थे।

पर राजा जब पचीस वर्ष का हुआ तब उसके मन में एक बार विद्रोह जगा और वह दुकान से पाँच सौ रुपये चुपके से लेकर कलकत्ते भगा। पर ससुर ने उसे कलकत्ते से पकड़वा कर बुला लिया। तब से राजा और भी बुरी दशा में ससुर के यहाँ रहकर अपना जीवन काटने लगा। और ससुर को विश्वास हो गया कि अब राजा भी उसके अन्य

दोनों दामादों की तरह जीवन भर उसके घर पानी भरेगा। राजा अपने दिन बिता रहा था। एक बार ऐसा हुआ कि ससुर ने व्यापार के किसी काम से दस हजार का बियरर 'चेक' देकर राजा को इलाहाबाद भेजा। राजा के मन में कुचला हुआ जो शत्रु बैठा था, उसे एक आखिरी दाँव मिला। उसने प्रतिहिंसा का निर्णय लिया और राजा 'बियरर चेक' को बैंक में भुनवा कर फरार हो गया।

ससुर ने वारंट जारी किए। राजा पर मुकदमा चला। आनरेरी मजिस्ट्रेट की इजलास से राजा को नौ महीने की सख्त सजा हुई और···।

राजा की दुकान बहुत ढीली हो गयी। रेडियो दुकान से न जाने कब उठ गया! अब उसने साइकिल पहिये का एक ठेला भी रख लिया है। सुबह-शाम साग-सब्जी रखवाकर कन्हई के साथ अब वह सब्जी बेचवाता है। खुद दुकान पर बैठता है।

बजरंगी प्रसाद ने एक दिन, न जाने क्यों, राजा को बहुत गालियाँ दीं, और उसे वहाँ से निकाल देने की धमकी दी। उस दिन से राजा का बजरंगी प्रसाद के घर में आना-जाना बंद ही हो गया। राजा दुकान के बाहर एक लोहे के चूल्हे पर कभी-कभी कुछ बना लेता है। पर बानी बहू की ममता राजा पर उसी तरह है। राजा एक दुखी शिशु पुरुष है! बहू मौका पाकर पूड़ी-परौंठा राजा के पास पहुँचा देती है। यूँ आजकल राजा प्रायः दुकान से गायब ही रहता है।

एक दिन सुबह ही सुबह राजा की दुकान पर सहसा बहुत भीड़ इकट्ठा होने लगी—बच्चे, भइया, बूढ़े सब तरह के लोग। सहसा पता चला कि राजा भइया कुछ महीनों के लिये दुकान बंद करके रीवाँ जा रहा है। वहाँ उसके बहनोई हैं—लोहे के बड़े व्यापारी। कुछ दिन

उनका कार-बार सँभालेगा, फिर अपने बूढ़े माँ-बाप को लेकर तीर्थयात्रा करेगा—जगन्नाथपुरी, गंगासागर, फिर·····।

पता नहीं रीवाँ, और फिर तीर्थयात्रा में कुल मिला कर कितने महीने लग जायँ, इसलिये राजा भइया दुकान एक तरह से खाली ही करके जायेगा। अनाज तो था ही नहीं। मसाले, साबुन, तेल, टाफी, लेमनड्राप्स, शीशा, कंघी, पेटेन्ट दवाइयाँ, नमक, कोयला आदि सब बेच डाल रहा है—सबके भाव बहुत घटा कर। शर्माजी के यहाँ दो दर्जन साबुन, गोयल साहब के यहाँ पाँच सेर हल्दी, पोस्टमास्टर साहब के यहाँ साढ़े सात सेर धनियाँ, बंगाली दादा के यहाँ छः सेर करुआ तेल, मास्टर साहब के यहाँ आधा टीन खुला डाल्डा, और घरों में बहनों के लिये आधे दाम में कंघी, पाउडर, क्रीम, स्नो, तेल आदि। जो लोग नकद दाम नहीं दे सके, राजा ने उन्हें उधार ही दे दिया। जब वह तीर्थयात्रा से लौटेगा, तब हिसाब कर लेगा। आखिर लौटकर उसे दुकान चलानी ही है।

दुकान की आलमारियाँ खाली हो गयीं। टिनों और बोरों का अम्बार लग गया। पास-पड़ोस के गरीब आदमियों को राजा ने बहुत-सी चीजें मुफ्त में ही दे दीं। पेटेन्ट दवाइयों को चौथाई दाम में ही लोगों को बाँट दिया। राजा घर-घर जाकर लोगों से आशीर्वाद माँगता रहा। राजा को लोग कहीं भूल न जायँ, राजा नत-शिर सब से प्रार्थी था।

लोग राजा भइया की जय-जयकार करने लगे। राजा तीर्थयात्रा से सकुशल जल्दी लौटे—इसके लिये सारे मुहल्ले के लोग मंगल कामना करने लगे।

संध्या समय बानी बहू ने राजा की दावत की। अप्रैल के अन्तिम दिन थे। तेज हवा बह रही थी। बानी बहू के घर के पिछवारे सेमल के पेड़ के फल पक कर सूख रहे थे। राजा आँगन में बैठा भोजन कर

रहा था। बानी बहू बेहद उदास सूने आँगन में रखी अनेक खाली शीशियों और खाली बोतलों को देख रही थीं। बजरंगी प्रसाद आज देर तक अपने पूजा के कमरे में अपने मित्रों के सँग 'जब बोलो तब तारानाम, खाली जिब्भा कौने काम!' की रट लगा रहे थे। बानी बहू चुप थीं। राजा चुप था। कीर्तन के शब्द उस उदास वातावरण को और भी करुण कर रहे थे।

राजा आज चला जायगा। लोग कह रहे हैं, राजा रीवाँ जायगा, फिर तीर्थयात्रा करेगा। उसके माथे पर संघर्ष और विद्रोह के तिलक हैं। वह अवश्य विजयी होगा! जो कानून कहता है, वह राजा नहीं है। राजा आदमी है। सहसा सेमल का एक बड़ा-सा फल चटका। हवा में सेमल की रुई का एक नन्हा-सा बादल उड़ते-उड़ते राजा और बानी बहू के बीच आ गिरा। कहीं दूर पर कुछ कौए सहसा बोलते हुए आँगन के ऊपर से उड़ गये। कीर्तन समाप्त हो गया।

राजा उसी रात के पिछले पहर में चला गया। कन्हई उसी साइकिल के ठेले पर साग-सब्जी बेचने लगा।

राजा की कोई चिट्ठी आयी?

कैसे हैं राजा?

कहाँ हैं?

'अभी रीवाँ में ही हैं, या तीर्थयात्रा में हैं?' मुहल्ले के बाबू-भइया लोग, लड़के, लड़कियाँ, महिलाएँ कन्हई से अक्सर पूछती रहती थीं। कुछ लोग बजरंगी प्रसाद और मुख्यतः औरतें बानी बहू से राजा के विषय में पूछती थीं।

आज दो महीने बीत गये। राजा का कोई पत्र नहीं आया। एक दिन खलीफा मंडी का एक महाजन अपने दलाल के संग सोहबतिया बाग

मुहल्ले में आया, और राजा की दुकान बन्द पाकर लोगों से राजा के विषय में पूछने लगा। राजा उस महाजन से चार सौ रुपये का गेहूँ उधार ले आया है, और उसका पता नहीं है। मुहल्ले के लोगों ने राजा की तीर्थयात्रा के विषय में बताया। उसी समय कटरा मंडी का दूसरा महाजन वहाँ आया। दोनों महाजनों की भेंट राजा की बन्द दुकान के सामने हुई। बानी बहू सामने के कमरे के खुले जँगले के पास खड़ी होकर महाजनों को कातर दृष्टि से देखने लगीं।

खलीफा मंडी के महाजन ने दूसरे महाजन से जै जै राम कहा, और बताया कि लोग कह रहे हैं कि राजा भइया कुछ दिनों के लिए तीर्थयात्रा में गया हुआ है।

कटरा के महाजन को तत्काल हँसी आयी—ऐसी जोर की हँसी कि उसकी लम्बी फैली हुई तोंद बलखाने लगी, और उसके मुँह के पान की पीक उसके कुर्त्ते पर बह गयी। अँगोछे से उसे पोंछते हुए वह बोला, 'खूब कहा, तीर्थ यात्रा! अरे ई है कि, पता नहीं आप को! ओ हो, ई है कि राजा भइया जेल में है, जेल में! लाल! वही उसकी तीर्थ यात्रा···!'

खलीफा मंडी का महाजन आश्चर्यचकित खड़ा रहा।

कटरा के महाजन ने बताया, 'राजा के ससुर से उसका एक मुकदमा चल रहा था न, अरे, चार सौ बीस का मुकदमा—हाँ···हाँ···जी, हाईकोर्ट में भी राजा हार गया और उसको नौ महीने की सजा हो गयी। इस समय वह पट्ठा जेल काट रहा है।'

'अरे! ओ हो हो!'

'मैं तो लाला, ई है कि यह देखने आया था कि अगर उसकी दुकान किसी और के जरिये खुली हो, तो मैं किसी तरह अपने रुपये वसूलने के लिये कोई जुगाड़ करूँ!"

'तो मुहल्लेवालों को नहीं पता यह कि राजा भइया जेल में है!'

खलीफा मंडी का महाजन कुछ और कहने जा रहा था कि बानी बहू जँगले से ही बोल उठीं, 'सुनिये। मेरी बात सुनिये!'

दोनों महाजन जंगले के पास आ गये।

बानी बहू ने दस-दस रुपये के दो नोट लिये हुए दायें हाथ को जँगले से बाहर निकाला, 'देखिये, आप लोग यह दस-दस रुपये ले लीजिये और यहाँ से चले जाइये! राजा आयेगा, आप लोगों का सारा हिसाब चुकता हो जायेगा—विश्वास रखिये!'

रुपये लेकर महाजन वहाँ से चुपचाप, जैसे सन्तुष्ट होकर चले गये।

संध्या रात में बदल गयी।

सामने म्युनिसिपैलिटी की बिजली की बत्ती जल उठी। मुहल्ले की सड़क और गली में प्रकाश फैल गया। घरों में रेडियो सिलोन के फिल्मी गीत बजने लगे।

●

सुन्दरी

दसईं ने कल रात फ़रीदपुर गाँव छोड़ दिया।

सरजू के तट पर पँचपेड़वा, वहीं धँजौल, मइन्दी और फ़रीदपुर गाँव के मुर्दे फूंके जाते थे।

दूसरी ओर उसी मुर्दघट्टे के पास अकेला आम का पेड़। उसी के नीचे दसईं ने झटपट अपनी राममड़ैया छा ली।

दसईं की औरत समुन्नरी मड़ई में सोएगी, और उसके दोनों बच्चे, ऊधो और दुलरी, पिता के सँग बाहर ज़मीन पर सोएँगे। धरती माई बिछौना, अकास मामा ओढ़ना!

दसईं ने कल रात समुन्नरी को मुँहैं-मुँह बहुत मारा था। उसका मुँह आज तक फूला हुआ है।

गाँव छोड़, उस आम के पेड़ के नीचे बसकर, इस नये घर में अब तक न चूल्हा गड़ा, न जला। आहत समुन्नरी तब से कराहती हुई फूस की चटाई पर पड़ी हुई है। दसईं और उसके दोनों बच्चे तब से चोरी-चोरी पँचपेड़वा के आम और बाबू की बगिया का फरेंदा खा-खाकर सरजू का पानी पी रहे हैं।

संध्या समय दसई ने समुन्नरी के उदास मुख को देखा। मड़ई में आग तो थी नहीं। दसईं अपने अँगोछे के सिरे को गोला लपेटकर, मुँह के भाप से फूँक-फूँककर, उससे समुन्नरी के मुँह को सेंकने लगा। समुन्नरी एक लम्बी साँस लेती हुई उठ बैठी।

दसईं सरजू के किनारे गया।

सरजू नदी धीरे-धीरे बढ़ रही थी। बहुत तेज़ पुरवाई थी। नदी के किनारे काँकर में झींगा पकड़ने का अनमोल अवसर था।

मुश्किल से आध ही घण्टे में दसईं ने सेरों झींगा अपने फाँड़ में भर लिया। घटवार से हाथ में आग लिये हुए वह जल्दी-जल्दी अपनी मड़ई पर पहुंचा। झटपट झींगा साफ़ कर वह आग जलाने चला और समुन्नरी मसाला लिये हुए आयी। धरती में खुदे हुए उस चूल्हे के आस-पास रेखा खींचकर उसने चौका कायम कर लिया।

पँचपेड़वा पर दो-चार गाँव के लोग आकर, सुरती-तमाकू पी रहे थे। कमर-पीछे हाथ बाँधे टहलते-टहलते दसईं वहाँ आया।

चीलम पीते-पीते दसईं ने दुखी होकर कहा कि फ़रीदपुर गाँव भी अच्छा नहीं।

ठाकुर की बड़ी बखरी में समुन्नरी सुबह-शाम चौका-बरतन करने, दुपहरी में अनाज उठाने-धरने का काम करती थी; सो बब्बन बाबू की नज़र समुन्नरी पर खराब हो गई। हाय, क्या जमाना हो गया! किसी की बेटी-बहू मेहनत-मजूरी करके दो टुकड़ा रोटी भी चैन से न खाने पावे। एक ने बीच ही में दसईं को टोककर दूसरे की ओर आँख मारते हुए कहा, "समुन्नरी भी तो कम नहीं है, ठाकुर की बखरी में मरदों से ठिठोली करती रहती है!"

"वह तो उसका सुभाव है, बबुआ" दसईं ने बताया, और यह कहते-कहते वह गुस्से से भर गया कि बब्बन बाबू ने समुन्नरी का हाथ क्यों पकड़ा। वह हँस-बोल है, पर बब्बन बाबू उससे क्यों छेड़खानी करते हैं? कहाँ राजा कहाँ परजा!...परजा का मतलब यह नहीं कि उसके पास अपनी इज्जत ही नहीं। परजा के पास तो वह है, बबुआ, कि कोई उससे आँख न मिला सके। हम अपना रकत सुखाते हैं, ताकि बाग-बगइचा में फूल खिलें, खेत-क्यारी में धान लहलहायं! मुला अब

का बताई ? बबुआ, हम तो किसी की बहू-बेटी से आँख नहीं मिलाता। बाबू लोगन कै औरत चाहे सुन्दर भी न हों, पर छिपा रखेंगे उन्हें दो अँगना भीतर, कोट में। मुला हमार औरत अगर सुन्दर है, तो वह गाँव की भौजी है का ?

समुन्नरी छः बच्चों की माँ है। दसईं का खयाल है कि समुन्नरी जैसी सुन्दर औरत उस गाँव-जवार में नहीं है। पर सब उसे क्यों इस तरह निहारते हैं ? दसईं बेचारा क्या करे ? उसे कहाँ लेकर भाग जाए ? हाय, सतयुग-त्रेता का वह जमाना कहाँ गया कि, परतिरिया बहिनी, सुतनारी, सुनु मूरख ये कन्या चारी; इन्हँहि कुदीठ बिलोके जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई।

समुन्नरी इतनी सुन्दर है तो इसमें दसईं बेचारे का क्या कसूर है ! लोग उससे खामखाह गाँव छुड़ा देते हैं। वह कब चाहता है कि समुन्नरी सुन्दर दीखे ? तभी तो वह आये-दिन समुन्नरी को मुँहैं-मुँह मारता है। उसका मुँह नोचता रहता है। बदन पर वही मोटिया की एक धोती और काला फटा झुलवा, कलाइयों में मुश्किल से काँच की चार-छः मोटी चूड़ियाँ, बस, न बदन पर कहीं एक गहना, न अलंकार !

पर समुन्नरी थी कि उसकी अथक जीवन-शक्ति का कहीं आर-पार ही नहीं मिलता था। सरजू नदी गरमी में सूख जाती है, पर समुन्नरी तो समुन्दर है, वह आज तक कभी नहीं सूखी। उसमें केवल ज्वार-भाटा ही उठता है। अभाव और यातना से कुछ भाप बनकर आँसुओं की शकल में धीरे-धीरे ऊपर उड़ जाता है। और ऊपर जाकर वह बादल बनकर कहीं छा जाता है, और सरजू के उस तट की सारी नंगी-जली धरती पर बरस जाता है।

समुन्नरी काम करती तो उसके शरीर में इधर-उधर, पैर से लेकर बाँह और कलाइयों तक, छोटे-बड़े अनार फल आते हैं। कभी आँख में सावन-भादों, कभी वसन्त। हाथ में घड़ा भरकर चलती, सर पर कठिन

बोझा उठाती, अथवा फाँड़ बाँधकर खेत में कुदार चलाती तो समुन्नरी के आँचल में जैसे दूब-अन्न की बँधी गठरी खिसककर खुलने लगती। हँसती तो लगता, समुन्नरी कभी दूब की छड़ी से भी नहीं छुई गई है।

भींगा-भात खाकर ऊधो और दुलरी ज़मीन पर कथरी बिछाकर सो गए। समुन्नरी ने केवल भात का माँड़ पिया, पर पेट भर पिया।

समुन्नरी दसईं की तरह भींगा-मछली, कलिया, चौगड़ा थोड़े खा सकती है। हाँ, दसईं और बच्चों के लिए बना अलबत्ते देती है। यह और बात है। उससे और समुन्नरी से क्या मतलब ! अरे, समुन्नरी तो अहीर की लड़की है, ग्वालिन है, ग्वालिन !···हम तो मथुरा की ग्वालिन, हम तो मथुरा की ग्वालिन, बेंचन जात दही रे दही···और दसईं कुर्मी है, कुर्मी—वह भी गुजराती नहीं, जैसवार।

समुन्नरी माँड़ पीकर बच्चों के साथ वहीं बाहर ही सो गई। दसईं चौधरी भर-पेट खूब चाँड़-चाँड़कर भींगा-भात खाकर और होंठ में खैनी ठूँसकर छैला की तरह गुनगुनाते हुए मड़ई से आगे बढ़ा, 'बिना मोती के चैना पड़त नाहीं !...'

समुन्नरी ने दसईं राम को ज़रा-सा भी टोका नहीं। वह जानती थी, बुढ़ऊ छैला गुनगुनाते हुए बागों में चोरी से आम बीनने जा रहे हैं। भूल में कई बार समुन्नरी ने दसईं को टोककर देखा था कि वह किस तरह उससे पिटी थी।

खूब लोट-लोटकर पुरवाई बह रही थी···भुइयाँ लोट बहै पुरवाई, सूखी नद्दी नाव चलाई···सरजू नदी की धार से थपा-थप और हल्ल-हल्ल की तेज़ आवाज़ उठ रही थी। ऊँचे कगार से हवा बेतरह टकराकर इस तरह शरं-शरं कर रही थी, जैसे असंख्य भूत-पिचास पंचपेड़वा के

मुर्दघट्टे से उठ-उठ के, कगार से सर-टकरा कर सारी दिशाओं में उड़ रहे हों। ज़मीन में लोटती हुई पुरवाई धूल के पंख बाँधे जैसे फुंफकारती हुई नागिनें हों। और पँचपेड़वा के हर पेड़ पर एक भूत, एक तेली-मसान, एक जिन्नात, एक औघड़ और एक पिचास ! बाबू के बाग में मुआँचिरई अपने जोड़े के सँग भयावह स्वर में बोल रही थी, खोदो तोपो, मुआँ-मुआँ !···दूर कहीं सरजू के कगार पर कोंहरडिग्गवा हूँ-हूँ कर रहा था। घाट की ओर सियार आपस में बड़े क्रोध से कटकटा कटकटाकर लड़ रहे थे। नदी में कोई लाश उन्हें मिल गई होगी। हाय राम, कितना भयानक और डरावना था वह सारा ! यह समुन्नरी उस सब की अभ्यस्त हो गई थी। उसके वे नादान बच्चे भी, दस साल का ऊधो और छः साल की दुलरी।

समुन्नरी वहीं कथरी पर लेटी हुई आसमान के शून्य में यूं ही, बिना किसी लक्ष्य, भाव अथवा अर्थ के विहार कर रही थी। उसने देखा, आसमान में तारे हैं, नक्षत्र हैं, इतने सारे ! हाँ, सब के एक-एक नक्षत्र, एक-एक अपना भाग्य !···पर उसका नक्षत्र कौन है ? समुन्नरी उन असंख्य झिलमिलाते हुए नक्षत्रों में अपना नक्षत्र ढूंढ़ने लगी। ये नक्षत्र तो सब बड़े-बड़े हैं। मेरा नक्षत्र तो बहुत छोटा-सा होगा ! हाय, कहाँ खो गया है ? कौन है उनमें मेरा ? समुन्नरी गरदन उठाती हुई दूर देखने लगी, दूर पश्चिम की ओर, जहाँ एक नक्षत्र आसमान से टूटकर ज़मीन की ओर आते-आते सहसा बुझ गया। आह ! वही समुन्नरी का नक्षत्र था, वह अब आसमान से टूटकर कहीं उस अभेद्य अन्धकार में गायब हो गया। तो···

समुन्नरी उसी ओर देखने लगी। उसी ओर उसकी ससुराल का वह गाँव है, तिलकौरी। सौ घर का पक्का अहिराना। उसके ससुर का घर गाँव के बीचोंबीच है। दरवाजे पर नीम का खूब छतनार पेड़ है। दो खण्ड का खपरैल का मकान। दीवारों में पक्की ईंटों की

कार्निस। दरवाजे पर चार बैलों की घारी। दाएँ भैंस-गायें बाँधी-दुही जाती हैं, बाईं ओर पक्की चरन है।

मेरे ससुर के तीन लड़के। बड़कू का बियाह माझा में हुआ है। बड़की खूब फाग गाती थी। मँझली उत्तर की लड़की थी, कैसी काली-काली आँखें थीं ! एक साँस में दस सेर जड़हन का चिउरा कूटकर फेंक देती थी। और, छोटकी में थी। अपने दादा के यहाँ से जब उस घर में गौने के डोले पर चढ़कर आयी, तब मेरा वो कितना छोटा था ! ठीक से धोती बाँधना भी तो नहीं आता था; लाँग खुल-खुल जाती थी। गाँव के लड़कों के संग जब वो भैंस-गोरू चराने जाता था, तब मैं ओखली पर खड़ी होकर जंगले से उसको निहारती रह जाती थी। उस बेचारे को क्या पता कि मैं उसकी दुलहन हूँ। लेकिन नहीं, पता तो ज़रूर रहा होगा, हाँ उसका अनुभव अलबत्ता नहीं था।···हाय ! कितना अच्छा नाम था उसका !···पर उसका नाम क्यों लूँ ?·· न जाने कितने पूर्व जन्म के पाप से इस भव-सागर में आ कूदी, अब उसका नाम लेकर क्या होगा ?···यह दसईं कुर्मी···नहीं-नहीं, इसका भी नाम अब क्यों ? यह तिलकौरी के पड़ोस वाले गाँव गोबिनापुर में रहता था। तब यह कलकत्ता से नौकरी करके पहली बार अपने गाँव आया था। मेरे घर से इसके यहाँ का आना-जाना होता था। मेरे बड़कू के लिए यह एक छाता ले आया था। ससुर को इसने चूना रखने के लिए चाँदी की चुनौटी दी थी। दरवाज़े के किवाड़ के पीछे खड़ी थी, तभी इसने मुझे पहली बार देखा था। मेरे करम में आग लगे, तभी मैंने भी इसे देखा। तब से सुबह-शाम रोज़ यह मेरे घर आने लगा। मेरे दरवाज़े पर फाग गाया जाता। यह उस गोल का अगुआ गायक होता। मैं भीतर औरतों के गोल की अगुआ थी। होड़ में कभी-कभी सुबह हो

जाती। एक बार मुझसे न रहा गया, मैंने भीतर से एक घड़ा पानी लाकर इसके ऊपर उँडेल दिया। इसने दौड़कर मुझे पकड़ना चाहा तो इसका दायाँ हाथ मुझसे पूरी तरह छू गया।···मेरे दरवाज़े पर गरमियों के दिन में धोबी का नाच हो रहा था। मैं बाहर ओसारे में बैठी थी, और यह सफेद कुरता पहने, खूब जुल्फ़ी झारे, भकाभक बीड़ी पीते हुए नीम के चबूतरे पर बैठा था। धोबी का लड़का कमर में बड़े-बड़े घुँघरू बाँधे हुए नाच रहा था। धोबी के नगाड़े के साथ कटोरा बहुत तेज़ घनघना रहा था—धिन्-ताँड़े-आँने-ना-ने·· धिनताँड़े··· आँड़े···

निबिया क पेड़वा जबै निक लागै,
जबै निक लागै,
कि जब निबकौरी न होय···
हाय राम, जब निबकौरी न होय !
फुलवा क सेजिया जबै निक लागै,
जबै निक लागै,
कि बगले दुलहवा होय···
हाय राम बगले दुलहवा होय !

इसने मेरी ओर देखकर धोबी के लड़के के सामने मारे खुशी के एक रुपया फेंक दिया। धोबी का लड़का और मस्त होकर नाचने लगा। मुझे न जाने क्या हो गया, मैं उसी रात इस चौधरी के साथ उस घर से भाग निकली !···यह मुझे लेकर कलकत्ते की ओर चला। मुझे संग लिये-लिये कहाँ-कहाँ नहीं छिपा ! पर जहाँ किसी की आँख मुझ पर उठी नहीं कि यह मुझे लेकर वहाँ से भाग पड़ता था। जब सब शान्त हो गया, तब यह मुझे लेकर सरजू के उस पार माँझे में रहने लगा। मैं दो बच्चे की माँ हुई। एक दिन वहाँ पुलिस के एक सिपाही ने मुझसे मज़ाक किया। इसने सामने से ही सुन लिया; सिपाही के ऊपर

लाठी लेकर टूट पड़ा। वह भाग गया, तो जी भर के मुझे पीटा।···फिर मुझे लेकर सरजू के इस पार चला आया।···

समुन्नरी अब छः बच्चों की माँ !

पर दो ही उसके सामने जीवित सो रहे हैं। शेष चार इसी सरजू में···समुन्नरी फफककर रो पड़ी।

सरजू-पार के आसमान से फिर एक नक्षत्र टूटा ! समुन्नरी उसे देखकर डर गई।

पुरवाई कुछ थम गई थी। आधी रात से ऊपर का समय हो रहा था। मुआँचिरई बोलती-बोलती कहीं उड़ गई थी। समुन्नरी ने अपने-आपको देखा, जैसे अपने को पहचान रही हो। यह वही समुन्नरी है क्या ? आँसू पोंछती हुई वह उठ खड़ी हुई। रात की उस भयानक निर्जनता में वह चारों ओर घूम-घूम कर देखने लगी···आस-पास के गाँव···फिर उनसे दूर के बाग, वह धंजौल !

संध्या समय गाँव के बेचारे पण्डित दसईं के घर आकर समुन्नरी के तीसरे लड़के भुलईं को भभूत दे रहे थे। उधर से कन्धे पर कुदार रखे दसईं चौधरी आया। समुन्नरी को उसके पास बैठा देखकर वह आग-बबूला हो गया। पचास गालियाँ दीं पण्डित को। समुन्नरी को हाथ-पैर बाँधकर मारा। गाँव वालों ने जब उसे पकड़वाकर पंचायत में बुलाना चाहा, तब दसईं अपने घर में आग लगाकर बच्चों सहित सुकुल के बाग में मड़ई डालकर रहने लगा। वर्षा के दिन, टूटी-सी दसईं की मड़इया। भुलईं को एक रात साँप ने डस लिया।···

दसईं फिर बैरमपुर में जा बसा। एक वर्ष बाद, पहलाद नायक पर समुन्नरी की ओर से शुबहा होने पर दसईं ने नायक का खलिहान फूँक दिया। कोई न जान सका कि यह दसईं चौधरी की करतूत

है, क्योंकि उसके चार ही दिन पहले दसईं ने अपने गले में तुलसी की कण्ठी बाँधी थी। फिर बैरमपुर छोड़कर चौधरी ने लोहा डाँड़ के टीले पर अपनी मड़ई छायी। पास ही हाजीपुर गाँव का कब्रिस्तान, और टीले पर न जाने कब का बना हुआ कुआँ था। वहाँ तीन ही महीने के भीतर समुन्नरी की गोद का बच्चा और उसके पहले की लड़की, दोनों चटपट में चल बसे।

फिर मइन्दी गाँव !

फिर उसे छोड़ सरजू का घाट !

चौथे बच्चे की वहाँ आहुति !

भोर होने को थी। समुन्नरी अपने दोनों बच्चों के बीच उनके सर पर हाथ रखे हुए मौन बैठी थी।

दसईं अँगोछे में बहुत-से पके हुए आम बाँधे लौटा।

उस दिन असाढ़ की अन्तिम रात थी। शाम से सुबह तक मूसलाधार पानी बरसा। दसईं की मड़ई क्या उसके सामने रुकती ? थूनी-थाम के साथ मड़ई आधी रात के समय मच-मचाकर बैठ गई।

ऐसी घटना दसईं के लिए कोई नयी न थी। ऐसा तो हर बरखा में हुआ है। क्या वह मुकुल का बाग, क्या लोहाडाँड़, और क्या वह सरजू का घाट ! दसईं उस रात अपने बच्चों सहित जगा हुआ बैठा था। मड़ई जब धीरे-धीरे गिरने लगी, तो एक ओर दसईं और दूसरी ओर समुन्नरी ने उसे हाथ देकर अपने ऊपर बचा लिया। सब उसके नीचे बैठे रहे पर समुन्नरी की ओर उतरहिया के झोंके सीधे बौछार मार रहे थे। वह अपनी जगह छोड़ नहीं सकती थी, दाएँ-बाएँ थूनी-बेंडा और सामने बरतन-भाँड़ा।

समुन्नरी आधी रात से सुबह तक उसी तरह बौछार के झोंकों से

भीगती रही। दसईं दूसरी ओर बैठा हुआ इन्द्र और दैव को घिना फोर-फोरकर गालियाँ देता रहा। दसईं के लिए उस वर्षा का क्या महत्व ! मजदूर आदमी, न अपना खेत, न अपनी बारी। ऊपर से बेचारी समुन्नरी उस बरखा से नाहक भीग रही थी।

"अच्छा-अच्छा, राम-राम कह, समुन्नरी। उत्तर की ओर दैव कट रहा है। पानी कुछ पटाते ही छप्पर उठाकर तुझे इधर कर लूँगा।··· बाबू की बगिया में लढ़ियन आम गिरा होगा। महन्दी के नाले में बड़ी-बड़ी मछली चढ़ रही होंगी।"

दसईं ने समुन्नरी को उठाना चाहा। वह हाथ-पाँव भींचे थरथर-थरथर काँप रही थी। सहारा देकर दसईं ने उसे दूसरी ओर किया और स्वयं लाठी-अँगोछा लेकर बाहर निकल पड़ा।

सुबह बरखा की बूँदी टूटी। दसईं एक ओर लाठी में पाँच सेर का रोहू और अँगोछे में आम लटकाए आया।

समुन्नरी दसईं को देखते ही हँसने लगी, यद्यपि वह ठण्ड से बेतरह काँप रही थी। मछली-आम रखकर दसईं गिरे छप्पर के भीतर दियासलाई ढूँढ़ने लगा।

दियासलाई पानी में गिरकर भीग गई थी।

चटपट दसईं ने समुन्नरी की मदद से थाम-थूनी किसी तरह ठीक कर मड़ई खड़ी कर ली। और आग के लिए फ़रीदपुर गाँव की ओर भागा।

वहाँ लाला के ओसारे में लोग बैठे हुए गाँजा-चिलम पी रहे थे।

वहाँ से आग लेकर दसईं जब लौटने लगा, तो किसी ने कहा, "दसईं, बब्बन बाबू ने तुम्हारी समुन्नरी को कान का झुमका दिया था, तुझे दिखाया था कि नहीं भला ?"

दसईं मन मार कर रह गया। हाथ की आग मानो उसके बदन में लग गई।

मड़ई पर पहुँचकर वह समुन्नरी को बुरी-बुरी गालियाँ देने लगा। समुन्नरी मड़ई में भीगी चटाई पर हाथ-पाँव बाँधे पड़ी थी। दुलरी ने उसे कथरी ओढ़ा दी थी। तेज बुखार से कराहती हुई वह हू-हू कर रही थी।

ऊधो बैठा आम चूस रहा था, और मक्खियों से घिरा हुआ था।

बोरसी में आग सुलगाकर दसईं का जी न माना। वह मड़ई में घुसा। चार-छः मिट्टी के बरतन थे। दो-तीन खाली पड़े थे, शेष में से किसी में मटर, किसी में जौ-केराई। एक मोटरी में कुछ फटे-पुराने कपड़े बँधे रखे थे। दसईं ने उसे खोल-खोलकर देखा। उसमें कहीं भी उसे झुमका न मिला। हाँ, उन बच्चों के दो-एक फटे-पुराने कपड़े उसमें अवश्य मिले, जो दसईं की उस गृहस्थी से सदा के लिए मुक्ति पा गए थे।

दूसरी ओर टिन का पिचका हुआ, न जाने किस युग का, एक छोटा-सा बकस पड़ा था। समुन्नरी के इस बकसे में चार आने वाला ताला लगा हुआ था, जिसकी कुंजी समुन्नरी अपने गले में हार के रूप में पहने रहती थी। दसईं ने ताले को मुट्ठी से ऐसा मरोड़ा कि वह बेचारा कुण्डे सहित बकस से चिंचियाता हुआ अलग हो गया।

दसईं ने बकस को देखा, उसमें वैसा कुछ नहीं था। किसी गहने की छाया तक भी नहीं थी।

फिर समुन्नरी ने अपने उस बकस को क्यों इस तरह बन्द कर रखा था ?···एक कजरौटा, एक काठ की डिबिया···डिबिया में यह ज़रा-सा सिन्दूर और यह एक इतनी बड़ी टिकुली !···

दसईं निस्पंद, मौन, वहीं बैठा रह गया। उसके सामने उसकी जन्म-भूमि गोबिनापुर, तिलकौरी गाँव में समुन्नरी का वह घर, कलकत्ते में उसकी नौकरी और वह कमाई, उसके दिवंगत बच्चे, सब-के-सब नाच गए।

समुन्नरी के माथे पर हाथ रखकर दसईं ने भरे कण्ठ से पुकारा, "समुन्नरी ! रे समुन्नरी !" समुन्नरी का माथा तेज़ बुखार से जल रहा था। वह बेसुध-सी पड़ी थी।

दसईं को कुछ न सूझा। ढाई रुपये में उसने वह रोहू मछली जयन्दीपुर के पठान के हाथ बेच दी।

सीधा भागा हुआ हँसवर बाज़ार गया। एक रुपया का दारू खरीदा, एक रुपया बड़े हकीम को देकर दवा ली, और आठ आने के चावल लिये हुए वह तीसरे पहर अपनी मड़ई पर लौटा।

उसने देखा, समुन्नरी बैठी हुई है। उसकी आँखों में काजल लगा है। माँग में सिन्दूर भरा है, और माथे पर वही गोल, लाल-लाल टिकुली।

हाय ! कितनी सुन्दर है यह !

पर क्यों यह इतनी सुन्दर हुई ?

दसईं एक हाथ में दारू और एक हाथ में दवा और चावल लिये हुए खड़ा उसे देखता रह गया।

···मुला हमार औरत अगर सुन्दर है तो वह गाँव-भर की भौजी है का ? हँसना-बोलना तो उसका सुभाव है, बबुआ !···समुन्नरी को लेकर वह कहाँ भाग जाए ? हाय, सतयुग-त्रेता का वह जमाना कहाँ चला गया जब···

दसईं ने दवा-दारू उसके सामने रखकर समुन्नरी के माथे पर हाथ रखा। बुखार उसी तरह तेज़ था। दसईं की ओर समुन्नरी ने देखा तो दसईं डर गया।

"तुमने मेरा बकस क्यों खोला चौधरी ? उसमें तुम्हें क्या मिला ? तुम मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करते ?"

समुन्नरी भला दारू क्या पीती ! जो कभी नहीं खाया-पिया, सो अब क्यों ?

दसईं से उसने उस अनुच्चारित स्वर में कहा, जिसमें वाणी होती है पर कथन नहीं, 'सुनो हो चौधरी ! मैं अपने घर-द्वार, सास-ससुर और पति को धोखा देकर तुम्हारे संग भाग निकली थी। ठीक है, जैसा करम में बदा था, वैसा हुआ। मैं तुमसे एक नहीं, छः बच्चों की माँ हुई, और तुम्हें मुझ पर फिर भी कभी विश्वास नहीं हुआ।···ठीक ही है। मुझ पर क्यों कोई विश्वास करता ? विश्वास के लिए मेरे पास है ही क्या ? उसमें तो मैंने पहले ही आग लगा दी थी।···पर मेरे कारन मेरे बच्चे···खैर, फिर भी मेरे ये दो बचे हुए लाल !'

समुन्नरी ने अपने दोनों बच्चों को अंक में भर लिया। अपने माथे की वह बड़ी-सी गोल टिकुली दुलरी के माथे पर लगाकर वह उसे चूमने लगी, "सुनो चौधरी ! मेरी बेटी की सादी में मेरी ओर से यही टिकुली दहेज में दे देना !···

समुन्नरी अगले दो दिनों तक तेज़ बुखार में बेसुध पड़ी रही। दसईं दिन में भी वहाँ भय खाने लगा—ऐसा भय कि उसे हरदम लगता था कि उसकी मड़ई के चारों ओर असंख्य भूत-प्रेत, पिशाच और जिन्नात की सेनाएँ डोल रही हैं। तीसरे दिन सुबह दसईं चौधरी अपनी समुन्नरी को कन्धे पर लादे हुए फ़रीदपुर गाँव में आ बसे।

पर समुन्नरी और कुछ न बोली। वह आखिरी शृंगार करके उसकी बरात मानो विदा हो गई।

पंचपेड़वा घाट पर समुन्नरी को फूंककर दसईं के संग गाँव के लोग उसके दरवाजे पर आ बैठे। दो क्षण के बाद, लोग वहाँ से उठकर चले गए। दसईं समुन्नरी के दाह का कपड़ा अपने गले में बाँधे हुए वहीं बैठा रह गया, जैसे उसकी कमर ही टूट गई हो। फिर उसने देखा, मानो हाथ में पीने का पानी लिये हुए घर में से समुन्नरी निकली है, उसी तरह हँसती हुई, माथे पर वही टिकुली—चौधरी, उठो, लो पानी पी लो।···उठो !···अरे अब तो मेरा विश्वास करो !

●